काश्मीर से कावेरी



ओ३म्

का
श्मी
र
से
कावेरी

५=

सम्पादक व प्रकाशक
कृष्ण कुमार धवन

● ● ●

मुद्रक
श्री लाला रोशन लाल
जैन प्रिंटिंग प्रैस
अम्बाला शहर

भैय्या की

स्मृति में

उन्हीं का जीवन

चार-चरण

परिचय

जीवन-रेखा

सिंहावलोकन

दैनन्दिनी

दैनन्दिनी में

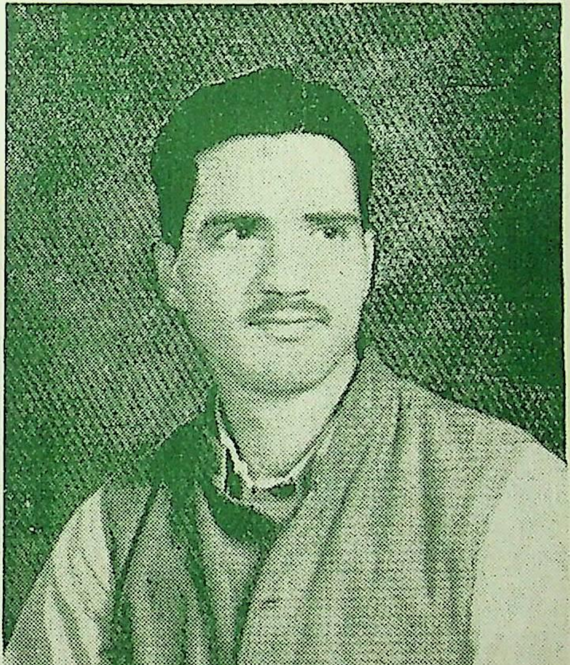
—

काश्मीर-कावेरिकम्

काश्मीरे प्रभवो, गृहात् प्रपतनं, शालागुरोस्ताडनम्,
आर्याऽऽचार-विचार-धारणमथो संघ-प्रचारे रुचिः।

छात्रस्याद्धरणं नदी-सलिलतो हुत्वा निज जीवनम्,
कावेर्यां निलयस्ततो हि तदिदं काश्मीर-कावेरिकम्॥

—वेदप्रकाशः विद्यावाचस्पतिः



माना कि इनकी जिन्दगी बहुत सस्ती,
पर छोटे दीपों की भारी हस्ती।

परिचय

परिचय

पहली जनवरी १९५४ से भाई बलदेव राज ने नियमित रूप से डायरी लिखना प्रारम्भ किया था। यह क्रम जीवन पटाक्षेप से दो दिन पूर्व, २८ सितम्बर १९५९ तक चलता रहा। अपनी डायरी सदा छिपा कर ही रखते थे।

१९५८ तक की डायरी में तो प्रायः प्रतिदिन के कार्यक्रम का ब्योरा मात्र ही लिखते रहे। कहीं २ उन में से भी मननीय मुक्तामणियाँ मिली हैं।

१९५९ की दैनन्दिनी तो मानों जीवन-रस-सार है। इस के एक २ पन्ने पर, दैनिक वृत्त मात्र के स्थान पर प्रतिदिन के जीवनानुभव का निचोड़ है। साथ ही उनकी आकांक्षा, जगद्-व्यवहार एवं जीवन रहस्य का अति सरल तथा सीधे-सादे परन्तु चुभते शब्दों में निरूपण।

o

जन जीवन में खूब घुसे रहने के कारण भैया के अनुभव इतने तीखे तथा विशद हैं जिनसे मानव मात्र की मनोभूमि स्पष्ट झलकती है। पढ़ कर एक फुरहरी सी उत्पन्न होती है। इतना ही नहीं, इस दैनन्दिनी के पारायण से विलक्षण शान्ति मिलती है, भाव-जगत् सामने थिरकने लगता है। वस्तुतः यही उनका जीवन दर्पण है, और दुःखी मन का सहारा।

भैया की डायरियों में संचित भाव, मैंने विषयानुसार इकट्ठे करके, विभिन्न कड़ियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भाव परस्पर इतने गुथे हैं कि इस विभाजन से मुझे स्वयं सन्तोष नहीं।

इस पुस्तिका के सम्पादन में भाई वेदप्रकाश जी से मुझे अमित सहयोग मिला है। इसके अभाव में यह सामग्री प्रकाशित करने की इच्छा कभी पूरी न कर सकता। जिस तत्परता और प्रेम से श्री फकीर चन्द जैन, प्रोपराइटर, जैन प्रिंटिंग प्रैस,

अम्बाला नगर ने इसका मुद्रण कार्य निभाया उसके लिए उनका चिर-ऋणी रहूँगा।

मुझे ज्ञात है कि वर्त्तमान रूप में प्रकाशित, भैया के संस्मरण, सम्बन्धियों एवं परिचित बन्धुओं की अपेक्षा के अनुसार नहीं, नाही भैया के भव्य जीवनानुरूप। अब अगले संस्करण के लिए उनके सुझाव बड़े उपयोगी होंगे।

३१ वर्ष पूर्ण करने पर भैया ने अपने जीवन का सिंहावलोकन भी एक स्थान पर किया था। आत्मकथा सा वह प्रसंग, कुछ अंश छोड़ कर, वैसे का वैसा, "सिंहावलोकन" भाग में, उन्हीं के शब्दों में दे दिया है।

साथ ही, भैया के कुछ अन्य जीवन-प्रसंग भी इस पुस्तिका के लघु-पृष्ठों में उतारे हैं। पाठकों से भी अधिक, मुझे स्वयं को इस 'जीवन-रेखा' का अधूरापन अखरं रहा है।

०००

अधूरापन इस लिए कि इस रेखा का आकलन, इसका अनुष्ठान और अवसान, दोनों घर वालों की आंखों से दूर ही हुए।

अनेक घटनाएँ ऐसी होंगी जिनका हमें ज्ञान नहीं। डायरी के प्रकाशन में और अधिक विलम्ब न हो अतः इतना तो छाप दिया। बन्धुजनों तथा भैया के परिचितों ने कृपा की तो शेष वृत्त भी अगले संस्करण में प्रकाशित करने की इच्छा है।

भैया की मृत्यु पर अनेक पत्र, लेख तथा प्रसूनाञ्जलियाँ प्राप्त हुई हैं। कुछ पत्र भैया के सामान से भी मिले हैं। वे सब भी उस संस्करण के साथ जोड़ देने का निश्चय है। भैया के लिखे पत्र जिन बन्धुओं के पास हो मुझे भेज दें—अवश्य और शीघ्र।

भैया का कोई भी अच्छा सा चित्र हमें उपलब्ध नहीं हो सका। किसी के पास हो, तो वे भी अनुगृहीत करें।

—कृष्ण

जीवन में ही नहीं,
मरण में भी निज जय है।

जीवन रेखा

जीवन-रेखा

भाई बलदेव राज जी का जन्म ११ श्रावण, विक्रम संवत् १९८५ को मध्यम दर्जे के एक क्षत्रिय परिवार में, श्रीनगर (काश्मीर) में हुआ। परिवार में कुल छः बहनें, दो भाई। पिता जी सरकारी नौकरी में थे। विधना का खेल देखिए; पिता जी ने अपना एक मात्र भाई, एक दामाद, बड़ी पुत्री और छोटा पुत्र एक ही आयु में खोए। उस अवस्था में, जब कि इन पादपों को फल लगने वाला था। पर क्रूर नियति का लेख कैसे मिटता ! न जाने विधि को भाइयों की जोड़ी विलग करने की इतनी जल्दी क्या थी। कुछ भी हो, ३० सितम्बर १९५९ को मैं एकाकी, असहाय और पंगु रह गया। छोटों को रुलाकर बड़ों को बड़ा आनन्द मिलता है ना !

सुगठित शरीर, उन्नत भाल, सब दिशाओं से विरोध होने पर भी अपने सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करने का अपार साहस, निज-गौरव रक्षा केलिए महान् से महान् कष्ट सहन करने की शक्ति तथा निज कर्त्तव्य-निर्धारण एवं तत्काल उसके पालन की क्षमता प्रभु ने इतने अल्प काल के लिए ही उन्हें क्यों दी ?

होनहार बिरवान के होत चिकने पात ।

बलदेव भैया की बचपन से ही धार्मिकता की ओर लगन थी । प्रारम्भ से ही आर्य समाज के सत्संगों में नियमित रूप से जाना. समाज के उत्सवों में बड़े उत्साह के साथ सेवाकार्य (बिना सौंपे) ले लेना, वेद मन्त्रों का सस्वर पाठ करना और उन्हें शीघ्र ही स्मरण कर लेना , उनके जीवन का पूर्वाभास

थे। आर्य समाज के हैदराबाद-सत्याग्रह के अवसर पर ११-१२ वर्ष की अल्पायु में ही, इन्होंने मेरे साथ, अपने रक्त से पत्र लिख कर सत्याग्रह में जाने की इच्छा प्रकट की थी।

उकसाए जाने पर भी भैया ने गाली कभी किसी को नहीं दी, मार-पिटाई भले ही कर दी हो।

आर्य समाज के संस्कार के कारण, पिता जी ने दोनों भाइयों को, केवल संस्कृत की शिक्षा दिलाने के विचार से, जम्मू की श्री रणवीर संस्कृत पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया। वे तो गुरुकुल भेजना चाहते थे पर माता जी माने नहीं। एक दिन पण्डित जी सो रहे थे। घण्टी बजी। कक्षा (तृतीय प्रवेशिका) पण्डित जी के पासपहुंची।

भैया ने, जहाँ से उस दिन का पाठ पढ़ना था– लघु कौमुदी' का सूत्र—'साहे साढ: स:'—बोल दिया। निद्राभंग हो जाने के कारण पण्डित जी ने पढ़ाने के स्थान पर कुछ अपशब्द कह दिए। भैया ने बात मन में बिठा ली। घर आते ही बस्ता पटक दिया और पाठशाला में, आगे पढ़ने से मना कर दिया। लाचार हो घर में ही पढ़ाई का प्रबन्ध कर दिया गया। सबको आश्चर्य में डालते हुए आपने एक वर्ष से भी कम समय में छठी श्रेणी की योग्यता प्राप्त कर सातवीं में प्रवेश पा लिया। तदुपरान्त डो.ए वी. हाई स्कूल, जम्मू से दसवीं श्रेणी प्रथम कक्षा में पास की और एफ.एस-सी. में दाखिल हो गए।

इसी बीच में, श्री प्रो० बलराज मधोक जी, वर्तमान संसत्सदस्य, की प्रेरणा से पिता जी ने

दोनों भाइयों को राष्ट्रिय स्वयं सेवक संघ में प्रविष्ट करा दिया; केवल इस विचार से कि व्यायाम हो जाया करेगा। परन्तु एक बार जो भैया ने संघ की 'प्रतिज्ञा' पा ली, सो उसी के हो गए।

संघ कार्य में व्यस्त रहने के कारण भैया कालेज की पढ़ाई ठीक प्रकार से न कर पाए। रुचि को राष्ट्रिय एवं सामजिक कार्यों ने ही खींचे रखा। जैसे-तैसे एफ.एस-सी. पास कर ली, और बी. एस-सी. में प्रविष्ट हो गए।

उसी वर्ष घर वालों की इच्छा के विरुद्ध, उनसे छिपे-छिपे संघ के "अधिकारी शिक्षण शिविर" में शिक्षा प्राप्त करने, बिलासपुर (मध्य प्रदेश) चले गए। साथ ले गए थे केवल एक लोटा और अपना गण-वेश।

इस शिविर के उपरान्त वे एक दम राष्ट्र के अनुरागी और घर से वैरागी हो गए। इतना कि बिलासपुर से लौटती बार, अत्यन्त उत्सुकता से बाट जोह रही बहिन को,दिल्ली जाकर भी न मिले; संघ के अनुशासन के कारण । उन दिनों जम्मू से दिल्ली जाना विलायत जाने के बराबर था। वहाँ से लौट कर घर के साथ उनका सम्बन्ध दो समय भोजन और आधी रात गए कुछ समय पढ़ कर सोने मात्र से रहा। लगभग सारा समय संघकार्य में ही व्यतीत होता था। पर बी.एस-सी. की परीक्षा भी देनी थी। परीक्षा आई और उन्हीं दिनों परमपूज्य श्री गुरुजी अमृतसर पधारे। भैया परीक्षा छोड़ उनके पास जा पहुंचे।

सन् सैंतालीस

फिर आया १९४७ का तूफ़ान। विभाजन से पूर्व ही लोग भय के मारे पश्चिमी पंजाब से

रियासत जम्मू वा काश्मीर की ओर भाग रहे थे। पीड़ित शरणार्थियों की सहायता के लिए राष्ट्रिय स्वयंसेवक सघ ने जम्मू में एक 'रिलीफ कमेटी' खोली थी। इसे सरकार का भी विश्वास (सहयोग नहीं) प्राप्त था। कार्यालय श्री रघुनाथ मन्दिर में था, जहां से पीड़ित बन्धुओं को यथाशक्य सहायता दी जाती थी। इसका संचालन भार मुख्यतः भैया पर ही रहा। चार-छः घण्टे मैं भी चला जाता था। मुख्याधिकारियों ने लाखों की धनराशि जनता में बांटने का अधिकार, पूर्ण विश्वास से भैया को दे रखा था। मैं तो इतनी अधिक धनराशि वहां देख कर और मुसलमानों से सताए बन्धुओं की गाथाएँ सुनकर घबरा जाया करता था।

नूतन स्पन्दन का संचार करने को अवतरित, इसी वर्ष रक्षा बन्धन के दिन घर के साथ रहा-सहा बन्धन भी तोड़ कर भैया

संघ के प्रचारक बन गए। घर वाले मुँह ताकते रह गए। उनकी यही धारणा बनी रही कि जल्दी लौट आएगा, सदा के लिए थोड़े गया है !

तब से भैया क्रमशः जम्मू से १४ मील दूर, पश्चिम में स्थित, अखनूर, बसोहली, हीरानगर, उधमपुर, रियासी, रामबन, पालमपुर (कांगड़ा). जालन्धर, दिल्ली और फिर जम्मू प्रान्त के ज़िला डोडा में दस वर्ष तक संघ के प्रचारक रहे।

भैया के लिए ये सभी प्रदेश अपरिचित थे। वे इनमें से जिस २ स्थान पर संघ के प्रचारक अथवा प्रजा परिषद् के कार्यकर्त्ता के रूप में गए, वहां के लोगों से आत्मीयता बनाने हेतु एवं कार्य में सुविधा के लिए उन स्थानों की बोली झट सीख लिया करते थे।

इस अवधि में जब कभी जम्मू आते तो भी कहीं घर का मोह पुनः न फांस ले, इस आशंका से कभी घर न आए। घर वालों को बाद में पता चलता कि 'बलदेव जी' जम्मू आए थे। निर्मोही ने ऐसे व्यवहार से सम्बन्धियों को अपने प्रति और भी मोह में डाल दिया।

सन् '४७ में पाकिस्तानी आक्रमण के समय भैया अखनूर में थे। जम्मू के इस पश्चिमी प्रदेश को हथियाने की लुटेरों की सभी कुचेष्टाओं को भैया ने विफल बना कर रख दिया। भारतीय सेना भी वहीं थी। उन्हें भी भैया की धाक, योग्यता और कार्य-कुशलता माननी ही पड़ी। उस प्रदेश में सेना की गति प्रायः भैया की जानकारी पर ही आश्रित थी। उस इलाके में नियत ब्रिगेडियर ने उन्हें सेना में सीधे कैप्टन-पद दिलवाने

को कहा। पर, स्वतंत्र-चेता बलदेव ने उत्तर में कोरी 'ना' ही दी। ये ब्रिगेडियर महोदय कई वर्ष बाद भी इन्हें सेना में ले जाने की इच्छा से इनकी खोज में रहे। १९५६-५७ में, दिल्ली में अन्तिम बार इन दोनों की भेंट हुई। भैया को वे 'केन्द्रिय सैनिक कार्यालय' में ले ग। वहाँ जाकर इनका इस प्रकार परिचय कराया कि यदि ये (भैया) उन दिनों अखनूर में न होते तो रियासत की सम्पूर्ण पश्चिमी सीमा पर भी आज पाकिस्तान का अधिकार होता। भैया को वहां भी पद का लोभ दिया गया, पर वे अपने पूर्व निश्चय पर ही स्थिर रहे।

जनवरी १९४८ में, केन्द्र से कुछ आदेश प्राप्त करने, भैया अखनूर से नागपुर के लिए रवाना हुए। पास में ना पैसे थे, ना कोई सामान। मैं

उन दिनों दिल्ली था। इस यात्रा में ही इन्होंने महात्मा गाँधी जी की निर्मम हत्या का समाचार सुना और यह भी कि मौके की ताक में बैठी सरकार इसी बहाने अपनी 'विरोधी' एक-मात्र शक्ति, राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ पर अपना भरपूर दमन चक्र चला रही है। उग्र राष्ट्र-प्रेम के अपराध के कारण, केवल अपने को देश-हितु समझने वाली कांग्रेस सरकार ने, महात्मा गाँधी की हत्या का आरोप, मात्र ईर्ष्यावश, संघ पर लगाकर, सहस्रावधि स्वयंसेवकों को जेल में ठूँस दिया और सर्व साधारण जनता को भी इनके विरुद्ध उभाड़ कर इन पर अनेक अत्याचार ढहाये। इसी चक्र में भैया भी सवा-महीना सरकार के मेहमान रहे, नागपुर में ही।

राष्ट्र-सेवा का भागीदार कोई दूसरा कैसे हो सकता है; इस द्वेष से महात्मा जी की मृत्यु के

उपरान्त, अपनी सरकार ने राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ प्रर प्रतिबन्ध भी लगाया। सो स्वयंसेवकों ने पुनः अपने को अग्नि परीक्षा में झोंक दिया। भैया पीछे कैसे रहते! परिणामतः वे भी फ़िरोजपुर जेल भेज दिए गए। तपकर सोना और भी खरा निकला।

जेल से छूट कर भैया ने एक बार फिर बी एस-सी. करने का प्रयास किया। पर परीक्षा के दिनों में तीव्र ज्वर हो जाने के कारण सफल न हो सके। ‡

---

‡ इसके आगे संघ में अपने जीवन के कार्य-काल का, भैया ने अपनी २१वीं वर्ष गांठ के अवसर पर, संक्षेप में वर्णन लिखा था। वह आगे के पृष्ठों में 'सिंहावलोकन' भाग में, उसी रूप में (कुछ अंश छोड़कर) छाप दिया है। यह वृत्त उनकी एक डायरी में से मिला है, जो वे सदा छुपा कर रखते थे।

सन् १९५२ में जम्मू में एक विद्यार्थी आन्दोलन चला था। बात यूँ थी कि गणतंत्र दिवस-समारोह के अवसर पर विद्यार्थियों ने राष्ट्रिय-ध्वज, तिरंगा फहराने का हठ किया था। इस अपराध के कारण कई छात्र कालेज से निकाल दिए गए और कईयों को विद्रोही घोषित कर जेल में डाल दिया गया। इस लपेट में छात्रों के अतिरिक्त रियासत के अनेक प्रमुख व्यक्ति भी आ गए। राष्ट्र-ध्वज के सम्मान की रक्षा-हेतु चले इस आन्दोलन में भी भैया अग्रणी रहे। इस आन्दोलन की सफलता के लिए इतने तल्लीन रहे कि मेरे विवाह में आकर भी उसमें सम्मिलित न हो सके।

तदुपरान्त जम्मू-काश्मीर रियासत का भारत में पूर्ण-विलय करवाने के निमित्त चलाए गए

प्रजा परिषद् के उस महान् आन्दोलन में, जम्मू प्रान्त के ज़िला डोडा का नेतृत्व करने का उत्तरदायित्व इन पर डाला गया। जिस असाधारण शक्ति और बुद्धि का परिचय इन्होंने इस आन्दोलन में दिया उसके कारण शेख़ अब्दुल्ला के लिए हौआ बन गए। ‡

इसके अतिरिक्त, शेख़ अब्दुल्ला दीर्घ काल से भद्रवाह-डोडा के प्राकृतिक सम्पदापूर्ण प्रदेश को जम्मू प्रान्त से काट कर, अपने सपनों के 'नया काश्मीर' से मिलाने को बड़ी आतुरता से सचेष्ट था। पर भैया की जागरूकता तथा सक्रियता ने

---

‡ आन्दोलन काल में भैया के साथ अनेक रोमांचकारी घटनाएँ घटीं। उनकी तत्कालीन गतिविधियों का पूर्ण विवरण अभी तक प्राप्त नहीं हो सका।

शेख़ के इस नापाक इरादे को सिरे नहीं चढ़ने दिया।

इस अवधि में जहाँ बलदेव भैया शेख़ अब्दुल्ला के शत्रु नम्बर एक हो गए वहाँ भद्रवाह-डोडा प्रदेश के लोगों के आत्मीय बन गए। वहाँ के बड़ों ने इन्हें पुत्रवत्, बहिनों ने भाई को तरह, समवयस्कों ने मित्र के समान जो अमित स्नेह एवं संरक्षण प्रदान किया, वह निराला ही था। भैया को मृत्यु से जो क्लेश इस इलाके को हुआ उसने उनके धैर्य के बाँध तोड़ ही दिए। उनका वह जीवन-धन जो लुट गया था, जिस पर उन्होंने अब्दुल्ला की पैशाची छाया तक कभी न पड़ने दी थी। जनता ने उनका एक स्मारक भद्रवाह में स्थापित किया है।

सामाजिक कार्य के साथ भैया ने दो-एक वर्ष जम्मू में सनातन धर्म स्कूल तथा राजकीय गांधी

मैमोरियल कालेज में नौकरी का स्वाद भी चखा। भला राष्ट्रदीप के शलभ को वह कहाँ अनुकूल बैठनी थी। समाज कार्य के लिए नौकरी की अपेक्षा शैक्षणिक योग्यता अधिक सहायक सिद्ध हो सकेगी, इस विचार से सन् १९५९ में प्रयाग विश्वविद्यालय से भौतिकी में एम.एस-सी. पास की। प्रयाग में दो-अढ़ाई वर्ष के प्रवास काल में भी उनके व्यवहार का रंग ढंग वही रहा। उनके निपट अनुराग तथा शुद्धशील का वहाँ के अध्यापकवर्ग तथा मित्र-मण्डल को यही फल मिला कि उनके आँसू आज तक नहीं पुँछ सके।

राष्ट्रिय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक रहते हुए भी भैया संघ-कोष से निजीखर्च के लिए कम से कम व्यय किया करते थे। किसी न किसी प्रकार अपने उद्योग से चार पैसे जुटा लेते थे।

अनिवार्य आवश्यकता होने पर भी उन्होंने कभी किसी से कुछ मांगा नहीं, ना ही आवश्यकता जतलाई। अभावों से पूर्ण जीवन में ही आनन्दानुभव करते थे। खेद तो यह है कि उनके इस तपोमय जीवन को उनके जीवन काल में किसी ने जाना नहीं।

जब आए तुम, मुंद गई पलक,
जब चले गए, तब आँख खुली।

भीषण रोग से पीड़ित होने पर भी अपनी चिकित्सा का बोझ उन्होंने संघ पर नहीं डाला, ना ही घर वालों से कुछ मांगा। बीमारी में लिए कर्ज को उतारने के लिए ही इन्होंने जम्मू में नौकरी भी की। घर वालों को इसका ज्ञान कुछ काल बाद हुआ।

जीवन की आवश्यकताओं को भैया ने अन्तिम सीमा तक कम कर रखा था। प्रचारक-जीवन में अपने पास दो से अधिक कपड़े कभी न रखते थे। कभी माता जी सी भी देतीं और थैले में डाल देतीं तो किसी को दे देते या घर ही छोड़ जाते। भोजन भी बिल्कुल सादा और सात्त्विक ही करते थे, प्राय: चने और गुड़ या मकई और बाजरे की रोटी। एक बार कुछ मित्र मिलकर भोजन कर रहे थे। भोजन में माँस भी था। भैया माँस नहीं खा रहे थे। एक मित्र न कहा, "साथ देने के लिए ही सही, कुछ तो खा लो।" भेया ने उत्त र दिया "आप ही मेरा साथ क्यों नहीं दे देते!"

प्रात: चार बजे उठना, मालिश तथा व्यायाम करके स्नान करना, सन्ध्या और फिर रामायण तथा गीता का पाठ करके दैनन्दिनी में कुछ वाक्य

लिखना और अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाना; बस यही था उनका प्रायः नित्य-कर्म। भैया को सम्पूर्ण गीता कण्ठाग्र भी थी और संस्कृत पढ़े बिना उच्चारण अति-शुद्ध। गीता के अतिरिक्त उपनिषदादि अनेक धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय भी वे नियमितरूपेण करते रहे।

भैया बलदेव का व्यवहार सदा और सर्वत्र अनौपचारिक ही होता था। साथ ही परिचितों से मेल-जोल रखने में कभी कोई त्रुटि या व्यवधान नहीं आने दिया। चाहे कितना भी आर्थिक कष्ट क्यों न हो, प्रत्यक्ष अथवा पत्र-व्यवहार द्वारा सम्बन्ध बनाए ही रखते थे। उनसे भी जो एकबार मिला उनका अनुरागी और अनुगामी हो गया। भैया का परिचय बड़ा विस्तृत और देश के सभी प्रान्तों में था। उनकी मृत्यु पर इतनी संख्या में पत्र

प्राप्त हुए कि उनको हम उत्तर भी न दे पाए। अनेक तो ऐसे थे जिन्हें परिवार वाले कम ही जानते हैं। परन्तु उनके उद्गार उन्हें भी बिल्कुल हमारे निकट ले आए हैं। गुरुजन भी बलदेव भैया के सदा प्रशंसक ही रहे। अध्यापकों को उनकी प्रकृति और विचारधारा के हामी बनने में अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव होती थी। साथ ही, सदैव अपने शिष्य के भविष्य के प्रति सचिन्त रहते थे। किमधिकम्, हर कोई उन पर अपना सर्वस्व लुटा देने को उद्यत रहता था, पर वह वैरागी किसी के मोह में कभी न पड़ा।

मनोमालिन्य ईर्ष्या अथवा अन्य किसी भी कारण से घर के बिछुड़े सदस्यों को पुनः मिलाने को ओर से भी, उनका दुर्लक्ष्य कभी नहीं हुआ। हाँ, 'लोकाचार' से सदा ही दूर रहे। बहनों को राखी का

उपहार देने की कभी याद दिलाने पर, राखी का बदला धन से चुकाने का सदा उपहास ही करते थे; किसी के घर खाली हाथ भले ही न जाते हों। बीमार के पास निरन्तर बैठे रहना और चाव से उसकी परिचर्या करना उन्हें बहुत भाता था।

जिस काम को कोई और हाथ न डाले, उसी को पकड़ लेना उनके लिए साधारण क्रम था। इसी साहस ने तो उनके प्राण ले लिए। सिद्धांत के इतने पक्के रहे कि अपने प्रति परिवार एवं संस्था के कठोर तथा सहानुभूति शून्य-व्यवहार के होते हुए भी अपने मिशन में मस्त रहे। वह मूक-तपस्वी कार्य की सफलता को ही अपने श्रम का पुरस्कार मानता रहा; लोकेषणा या वाहवाही के जगत् से जानबूझकर दूर रहा।

ऐश्वर्य तुम्हारा इष्ट नहीं, सुकृति को प्रभु तुमने माना।
श्रम की गुण गरिमा को जी भर, कर्तव्य रूप में पहचाना॥

राजनैतिक विरोधियों तथा विचारधारा से मतभेद रखने वालों का अमित स्नेह और विश्वास भी भैया को सदा और सर्वत्र प्राप्त रहा। इसका कारण था उनका मधुर स्वभाव, स्पष्टवादिता और अपने ध्येय के प्रति ईमानदारी।

अन्तिम-प्रवास

भैया १०—११ वर्ष तक संघ के प्रचारक रहने के उपरान्त प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. एस-सी. पास करके, १२ जुलाई १९५९ को हिन्दु कालेज, सोनीपत (पंजाब) में भौतिकी के प्राध्यापक लग गए। कुछ दिन छात्रावास के इञ्चार्ज भी रहे। नौकरी स्वीकार तो कर ली पर निरन्तर उखड़े २ से अनुभव करते रहे। पौदा मूल-स्थान

से उखड़ कर अनुपयुक्त भूमि में आ लगा था। "नौकरी उनके योग्य नहीं, अपने जीवन के मिशन से उपहास है, जीवन कार्य से दुर्लक्ष्य है ; इसी उधेड़ बुन में थे कि २३ सितम्बर को सायं ५ बजे कालेज के ६० विद्यार्थियों के साथ दक्षिण भारत के शिक्षा-प्रवास पर जाना पड़ा। † साथमें तीन प्राध्यापक और थे।

अनेक स्थानों का पर्यटन करते हुए, विद्यार्थी-दल ३० सितम्बर १९५९ की सायं को, ४-५ बजे तिरुचिरापल्ली (मद्रास) पहुंचा। आगे के लिए गाड़ी रात्रि ११ बजे चलनी थी। अतः सारा दल

---

† मूलतः जाना तो था प्रो० ओम्प्रकाश शर्मा जी ने, पर कारणवश वे न जा सके और उनके स्थान पर बलदेव भैया को भेजा गया।

तीन-चार टुकड़ियों में बट कर नगर-परिभ्रमण के लिए निकल गया।

बलदेव भैया के साथ १०-११ छात्र थे। वे घूमते-घामते सात बजे के करीब अम्मा-मण्टपम, श्रीरंगम के निकट, कावेरी नदी के घाट, गिरदामण्टपम पर पहुंचे। दक्षिण में इन दिनों अभी गर्मी होती है अतः कुछ विद्यार्थियों ने वहाँ स्नान करने की इच्छा प्रकट की।

भैया तैरना खूब जानते थे। अखनूर में रहते अनेक बार चन्द्रभागा(चनाब)नदी के चौड़े पाट को चीर चुके थे। एक बार बाढ़ के दिनों में जम्मू में, तवी में,नाव से डूबते हुए २०-२१ व्यक्तियों को एक ही सांस में बचा लाए थे। फिर भी, अनदेखे जल में घुसना ठीक नहीं, अतः भैया ने

घाट पर कपड़े धो रही एक बुढ़िया तथा एक अन्य व्यक्ति से वहाँ स्नान करने के विषय में पूछा। उन्होंने बतलाया कि घाटपर स्नान करने में कोई भय नहीं। सो भैया के साथ पाँच-सात विद्यार्थी जल में उतरपड़े। इतने में कोई साढ़े सात बज गए होंगे। स्नान करके भैया घाट के किनारे कपड़े पहन रहे थे और दो तीन विद्यार्थी अभी जल में ही थे। तभी प्रथम वर्ष के एक और छात्र अशोक ने आकर स्नान करने की इच्छा प्रकट की। छोटा होने के कारण भैया ने बहुतेरा मना किया पर वह माना नहीं। सो उसे घाट के किनारे पर ही स्नान करने को अनुमति दे दी। पर, स्नान करते २ वह घाट से भी आगे निकल गया। वहाँ पानी गहरा था और बहाव भी तेज़। इस स्थिति में अशोक सहायता के लिए चिल्लाया। भैया ने अभी

स्नान कर रहे, दो अन्य छात्रों को उसे सहारा देने के लिए कहा, पर वे साहस न कर सके। सो भैया एकदम वस्त्रों सहित नदी में कूद पड़े। तेज़ी से तैर कर अशोक के पास पहुंचे, अशोक को घाट की ओर धकेल दिया। पर, हा! स्वयं उस भयानक भंवर से न निकल सके और वहीं जलमग्न हो गए!

भैया का डूब जाना किसी ने न देखा। सब का ध्यान अशोक की ओर लग गया था। क्षण भर में ही तो यह क्रूर-लीला हो गई। इधर अशोक नदी के किनारे लगा, उधर वह जीवन–निर्मोही हम सब से किनारा कर गया।

इस कलिकाल में अपनी इच्छा के विपरीत होते इस अनहोने कार्य को ईश्वर कैसे सहन कर सकता था। पर,

जीवन में ही नहीं, मरण में भी निज जय है।

जब मुझे भैया के नदी में लापता होने की सूचना मिली, उस समय मैं मान्य श्याम जी तथा शक्ति बहन जी के साथ बैठा, उनसे भैया की सगाई के बारे में अन्तिम निर्णय ले रहा था। शक्ति बहन जी को भैया 'माता' मानते थे।

भैया की तैरने की शक्ति के भरोसे हम यही आशा लगाए बैठ थे कि अवश्य कहीं न कहीं किनारे लग गए होंगे। पर सदा से बिना जतलाए, चुपचाप कार्य करने का अभ्यासी तो कभी से मृत्यु-वरण कर चुका था।

खोए रत्न को पाने की मृगतृष्णा में तीन दिन तक, साथी प्राध्यापकों और छात्रों ने दौड़ धूप की। पुलिस तथा स्थानीय बन्धुओं ने भी भरसक यत्न किया, पर वह आँखों से ओझल ही रहा। अन्ततः ३ अक्तूबर को, दोपहर के समय तिरुचिरापल्ली

से आठ मील नीचे, ग्रैण्ड-एनिकट (Grand Anicut) के पास तैरता हुआ, उनका मात्र पार्थिव देह ही, अति विकृत दशा में, हाथ आया। जीवन-शक्ति न जाने कब की महाशक्ति में लीन हो चुकी थी। श्री प्रोफैसर सत्यपाल जी ने शव को पहचाना और अनेक व्यक्तियों के समक्ष विधिपूर्वक अन्तिम संस्कार किया। जल-देव की गोद में बैठे बलदेव को उसीकी शक्ति अग्नि-देव को समर्पण करदिया गया।

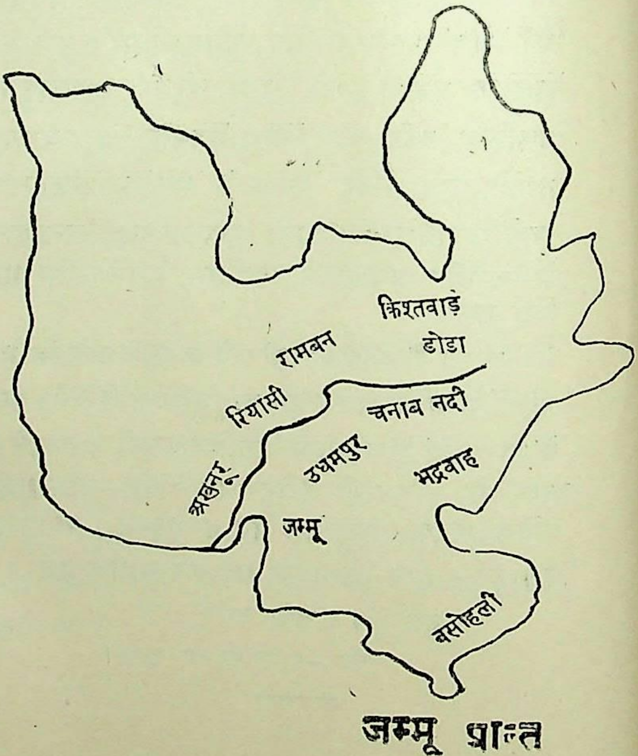
भैया के भस्मावशेष प्रो० सत्यपाल जी दिल्ली लाए और वहाँ से प्रो० बलराज मधोक जी, अपने भाई, शिष्य एवं सह-कर्मिष्ठ का वह मात्र-चिन्ह लेकर ७ अक्तूबर को जम्मू पहुँचे। उस समय को भाव-भूमि का रेखांकन एव सुहृज्जनों, नागरिकों तथा सम्बन्धियों के आवेश का निरूपण कैसे किया जावे!

अगले दिन, ८ अक्तूबर को सुशील के साथ, मैं भैया की अस्थियां लिए, भैया की आदि कर्म-भूमि अखनूर गया। श्री पिता जी की इच्छानुसार प्रचलित रूढि एवं अन्ध-विश्वास को मान्यता न देते हुए, वैदिक विधान के अनुसार अखनूर में, इन्हीं अभागे हाथों द्वारा पुण्य-सलिला चन्द्रभागा के गम्भीर प्रवाह में, अन्तिम पार्थिव-शेष बहा दिए गए।

भारत के शीर्ष काश्मीर में जन्मे, देश के विभिन्न प्रदेशों में लीला करते हुए, मातृभूमि के चेरे ने, अन्त में, भारत मां के चरणों में तिरुचिरापल्ली जा, कावेरी नदी में जीवन की धरोहर जा सौंपी—अति शुद्ध, पवित्र करके, खूब मल मल के धोकर। परिक्रमा पूर्ण हुई। पुष्प देवता पर चढ़ कर सार्थक हुआ।

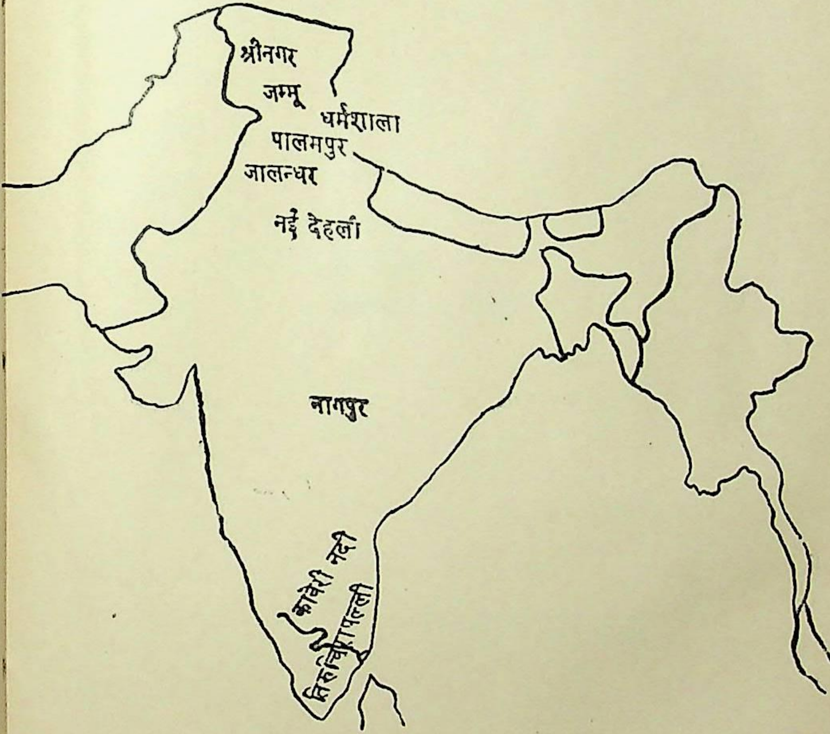
तेरी सुधि में अर्पण कर दूँ
जीवन—प्रभात का जग सारा।

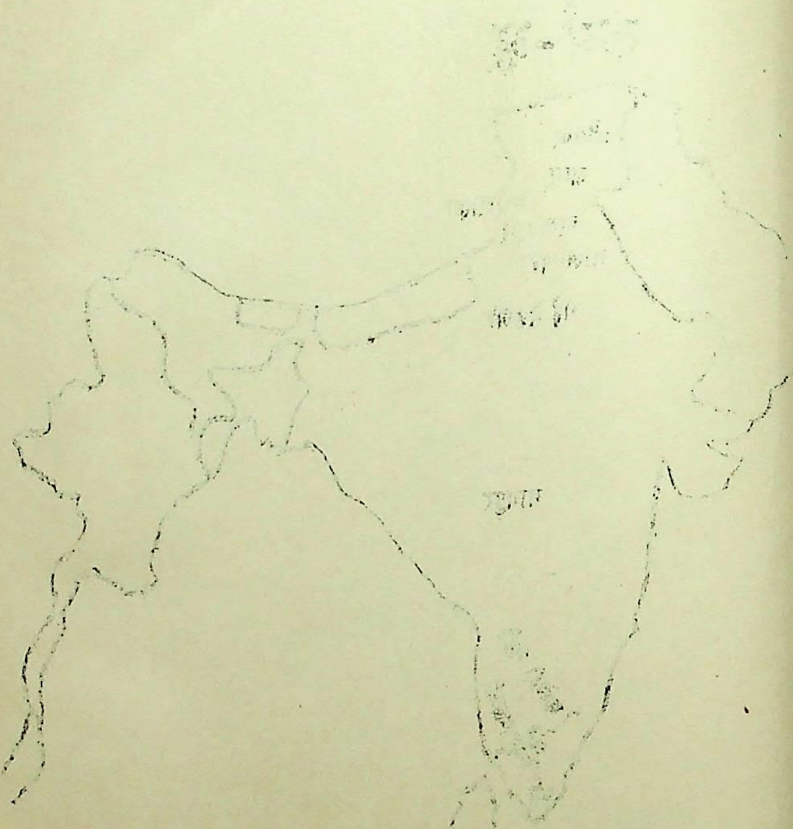
मातृ-भू



जम्मू प्रान्त

कर्म-भू





बीति ताहि बिसारी दे।
आगे की सुधि लेय ॥

सिंहावलोकन

सिंहावलोकन

दायें, बायें, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे एक २ ग्रास डाल कर सातवां ग्रास अपने मुख में डालने का अभ्यास शैशव काल में मुझे था। सम्बन्धी मेरे इस व्यवहार को मूर्खतापूर्ण मानते थे। इसी कारण मुझे 'गुज्जर' की संज्ञा दी गई। परिवार में सब से छोटा होते हुए भी शारीरिक बल मेरे में बाकी सब से अधिक था। अतः 'गुज्जर' पुकारे जाने पर प्रत्युत्तर में गाली कम देता था, प्रायः मारने को पड़ता था।

मेरी अवस्था तब तीन वर्ष की रही होगी जब मैं मकान के दुमंजिले से आंगन में आ गिरा। लोहे का छींका टंगा हुआ था, वह भी टूट गया। पर मुझे कहीं चोट न आई। रोता रोता ऊपर आया, मां के पास जाना चाहता था परन्तु उसी समय

छोटी बहन ने जन्म लिया, अतः लीला बहन ने गोद में ले लिया और शुष्क स्तन पान (?) कराके सुला दिया।

एक दिन प्रातः उठते ही देखा कि परिवार के सब लोग घर पर नहीं, जो हैं वे रो रहे हैं। उन्हें रोते देख कर मैं भी रोने लगा। पता चला कि सब से बड़ी बहन शान्ति देवी मर गई हैं। 'मरना क्या होता है', यह ठीक २ मुझे पता न था। इतना भर पता था कि वह फिर कभी न दिखेंगी। मैं खूब रोया।

भैया ने एक बार मुझे थप्पड़ मारा तो मैं बेहोश हो कर गिर पड़ा। माँ कहने लगीं मेरा दिल कमज़ोर है इस लिये मुझे कोई गुस्से न हुआ करे।

दाँत की दवा बेचने वाला एक व्यक्ति ब्लेड चबाया करता था। मैंने एक बार छुप कर प्रयास किया—सफल रहा। तत्पश्चात् कितने ही ब्लेड चबा चबा कर खाये। अब नहीं खाता।

स्कूल में एक बार मास्टर ने लघुशंका निवारणार्थ नहीं जाने दिया और ग़ाली दे दी। मैं मास्टर को चपत लगा कर घर भाग आया, फिर उस स्कूल में नहीं गया।

प्रथम कक्षा में तीन स्कूल बदले। अन्त में श्री रणवीर संस्कृत पाठशाला में प्रविष्ट हुआ। रात्रि को पिता जी वेदमन्त्र स्मरण करवाते थे। मैं बड़े भाई की अपेक्षा शीघ्र स्मरण कर लेता था। वैसे भी पाठशाला में, पढ़ाई में मैं प्रायः प्रथम या द्वितीय रहता था।

खेल कूद में मैं सामान्य था परन्तु रुचि बहुत रखता था। किसी भी खेल में कभी पीछे नहीं रहता था। शारीरिक बल मेरा साधारण था।

एक बार एक मित्र से किसी बात पर एक रुपए की शर्त लगाई। मैं हार गया, तय हुआ जब तक शर्त की राशि ना चुकाऊँ, उसकी आज्ञा में रहूँ। मैं कितनी ही देर वचनबद्ध रहा। बीच में ग्रीष्मावकाश आ गया जिसके पश्चात् बात भूल सी गई।

अन्धकार में, बड़े बदमाश लड़कों से मुझे डर अवश्य लगता था परन्तु मेरा विश्वास था कि गायत्री का जाप करने से कोई आपत्ति नहीं आया करती अतएव खूब जपता था।

आर्य समाज के सत्संग में नियम से जाने का अभ्यास सा बन गया था। उपदेश ध्यान से सुना करता था और यदा कदा आर्यसंन्यासियों के पास घण्टों बैठा रहता था। उनका छोटा-मोटा काम कर देना और उनकी बातें सुनते रहना—यही तो होता था।

वैसे स्कूल और मुहल्ले की संगति मेरी अच्छी नहीं थी और यदि कहा जाये कि गन्दी थी तो अत्युक्ति नहीं। इस बीच में, जब कि मेरा हृदय धार्मिक वृत्ति में आनन्द पाता था और संगति मेरे जीवन को गन्दा बना रही थी, मैंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में प्रवेश पाया। तब मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था। अच्छी संगति पा कर मेरे पतित होने का द्वार मानों बन्द हो

गया। यह प्रभु की अपार कृपा आज भी मानता हूँ।

संघ-कार्य मेरा मुख्य कार्य हो गया। इसके बिना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता था। संघ के अधिकारियों का जीवन मेरे लिए देव वचन थे। संघ की आज्ञा को मैं ऐसे ही ग्रहण करता था जैसे प्राण श्वासों को। अपने इस आचरण के कारण माता, पिता, भाई, बहनों से मुझे वह सब भी सुनना पड़ा जो नहीं सुनना चाहिए। भाई-बन्धु मेरे व्यवहार के कारण दुःखी होते हैं—ऐसा विचार मुझे कभी विचलित न कर सका।

तब मैं कालेज में पढ़ता था। परम पूजनीय श्री गुरु जी बैठक ले रहे थे। उन्होंने मेरे से पूछा—"पढ़ कर क्या

करोगे?" मैंने उत्तर दिया—"संघ कार्य, आजीवन" उन्होंने इतना ही कहा—"बातें बहुत बड़ी करते हो, करना पड़ेगा तो पता चलेगा।"

संघ कार्य में व्यस्त रहने के कारण मेरी कालेज की पढ़ाई ठीक नहीं हो पाई। .... एफ. एस-सी. जैसे तैसे पास किया और बी. एस-सी. में प्रविष्ट होगया। परन्तु पढ़ाई फिर वैसी की वैसी।

सन् १९४७ में मैंने संघ का प्रचारक बनने का निर्णय कर लिया। 'रक्षा बन्धन' के शुभ दिन मेरी नियुक्ति अखनूर तहसील में हुई। जम्मू से दमाना टांगे पर और फिर अखनूर तक पैदल ही गया। 'रक्षा बन्धन' को प्रातःकाल अखनूर में

तहसील प्रचारक के नाते मेरा परिचय करवाया गया।

....

....परन्तु इधर उधर अन्य कार्य-क्रमों की व्यस्तता से उत्साह में कोई विशेष रुकावट नहीं आई। 'ऐसा बड़ों २ में होता है' यह धारणा मेरी बन गई और मैं पतन के मार्ग की ओर झांक लिया करता। यह भी विचार आता कि देखना चाहिए कि मैथुन करने में क्या आनन्द होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मैंने भी मनसा व्यभिचार करना आरम्भ कर दिया। मुझे लगा मैं प्रचारक रहने योग्य नहीं। और इस प्रकार मेरी आत्मग्लानि बढ़ने लगी। मैं राष्ट्र कार्य का और

रास्ता ढूँढने लगा।

१९४७ के आक्रमण और संघर्ष काल में मैंने लुटेरों तथा बलवाइयों से जनता और देश को बचाने के लिए सब कुछ किया परन्तु धन संग्रह नहीं कर पाया। यह अच्छा ही रहा। लूट पाट की बदनामी न हो सकी। कम से कम मैं आत्मा के सामने निर्दोष रहा।

कुछ भी रूखा सूखा ग्रहण करने में मुझे सदा आनन्द का और गौरव का ही अनुभव होता था परन्तु मिलने पर मैं खूब डट कर हाथ साफ करता था। यह आदत मेरी बहुत देर तक बनी रही।

एक बार *4th Brigade* के ब्रिगेडियर ने मुझे सेना में भर्ती हो जाने को कहा। उसने यहाँ तक कहा कि मुझे सीधे कैप्टन का पद दिलवा देगा। परन्तु मैंने यह कह कर साफ इनकार कर दिया कि अभी तक तो आपके लिए यह बन्धन है कि आपकी गोली पाकिस्तान में नहीं जानी चाहिए, फिर मेरे पर भी यह बन्धन हो जाएगा, जो सर्वथा अनुचित है।

अखनूर तहसील में मुझे उन बहुत सी बातों की सूचना मिली जो उससे पूर्व किसी को मालूम न थीं। कोई सुनने वाला उन्हें न मिला था। मैंने सब की सुनी और स्पष्ट तथा योग्य व्यवहार करने में सफल हुआ। मैंने अपने कानों के दरवाज़े खोल दिये और लोगों ने ज़बान के ताले। अस्तु !!

यह बात मेरे मन में समा गई कि प्रचारक पदासीन होने के योग्य मैं नहीं परन्तु आजीवन संघ कार्य करना ही है। मैंने इस आशय का पत्र जम्मू भेज दिया। कुछ काल उत्तर की प्रतीक्षा की परन्तु मौन ही मिला। अन्ततः एक दिन थोड़ा सा सामान साथ ले कर चल पड़ा। बस स्टैण्ड पर आया तो पता चला सड़क बन्द है। पैदल ही चल पड़ा। कठूआ तक पैदल आया। वहां से एक मिलिटरी ट्रक में बैठ कर पठानकोट और वहां से गाड़ी में दिल्ली आ गया। एक-दो दिन दिल्ली रुक कर बम्बई चला गया। रेल यात्रा बिना टिकट की। बम्बई के रास्ते में ही कल्याण स्टेशन पर गान्धी जी की हत्या का समाचार सुन लिया था। बम्बई पहुँचा तो पूर्ण हड़ताल थी।

स्टेशन पर एक स्थानीय स्वयंसेवक से भेंट हुई। उसने बताया कि शहर में मारकाट मची है, स्वयं सेवक सूचक कोई चिह्न मत रखो। मैंने टोपी उतार ली। बिना खाए पिए बम्बई में तीन दिन घूमा।

चौथे दिन समाचार पत्र में पढ़ा कि परम पूज्य गुरु जी को बन्दी बना लिया गया है। सब विचार छोड़ नवोत्पन्न स्थिति में अपना कर्तव्य निर्धारित करने नागपुर आ गया। परन्तु वहां बन्दी हो गया। सवा महीना जेल में रहा परन्तु दिन गिन कर बिताये। पश्चात् नागपुर में २०—२५ दिन और रहा। वहीं श्री ओंकार सिंह जी से भेंट हो गई। उन से हृदय

की चार बातें हुईं। मुझे ऐसा लगा मानों पागल हो जाऊँगा। धीरे धीरे हृदय संभला और मैं जालन्धर आ गया।

वहां से मुझे कांगड़ा विभाग में, श्री हरीश मित्र भनोट के संग भेज दिया गया। पालमपुर तहसील में मेरी नियुक्ति हुई। पूर्णतः अपरिचित क्षेत्र में, विरोधियों के बीच छुप कर कार्य करने का यह निराला ही अनुभव था। कई अविस्मरणीय प्रसंग उपस्थित हुए। मैंने शीघ्र ही स्थानीय बोली सीख ली जिससे कार्य में बहुत सहायता मिली। (वासना के भद्दे चित्र देखने को यहां भी मिले।)

इसी बीच मैंने बी० एस-सी० परीक्षा देनी चाही। पहले

तो आज्ञा (संघ-अधिकारियों से) मिल गई परन्तु पश्चात् मनाही हो गई। परन्तु परीक्षा से सप्ताह भर पहले, योजना में परिवर्तन हो जाने के कारण, पुनः अनुमति मिल गई। पर मैं सफल न हो सका।

पश्चात् सत्याग्रह आन्दोलन हुआ और मैं भी जेल गया। जेल का (फिरोजपुर) वातावरण बड़ा उत्साहपूर्ण एवं आकर्षक रहा। जेल से मुक्त होने के उपरान्त मैंने परीक्षा की पुनः तैयारी की। परन्तु परीक्षा के दिनों में (जालन्धर में) १०६° ताप हो गया। अतएव फेल हो गया।

तत्पश्चात् जालन्धर कार्यालय में ही रहा। श्रीवर चमन

लाल जी का सहवास पर्याप्त समय प्राप्त हुआ। मैं नहीं कह सकता कि ऐसा मित्र मुझे कोईऔर प्राप्त हुआ हो। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा जो शायद अन्यथा न सीख पाता।

बी० एस-सी० के लिए पुनः बीस दिन मिल गये। मैं २४१ अंक ले कर पास मात्र हुआ। तत्पश्चात् मेरी एक इच्छा हुई कि एम०एस-सी० कर डालूँ। परन्तु आज्ञा न मिल पाई और मुझे मण्डी ज़िला में भेज दिया गया। पूर्व निश्चित तो हुआ था प्रान्त का 'विद्यार्थी परिषद्' का काम, परन्तु योजना बदल गई। मण्डी जिला में मैं कठिनता से दो मास रहा हूँगा कि वहाँ से मुझे जम्मू भेज दिया गया।

अब जम्मू में वर्ष भर में शाखाओं का कार्य करता रहा। (पुनः वासना का घिनौना चित्र देखने का दुर्भाग्य हुआ) पश्चात मुझे भद्रवाह किश्तवाड़ तहसीलों में प्रजा-परिषद् के ज़िला प्रचारक के नाते नियुक्त किया गया। तत्पश्चात् रामबन तहसील का काम भी देखने लगा। प्रजापरिषद् का कार्य करते हुए मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि (१) ... .
(२) कोई भी कार्य करने के लिए संचालक-शक्ति-पूर्ण व्यक्तित्व होना चाहिए तथा इसके लिए निज का सामाजिक स्तर बढ़ाना चाहिए।

अतः विचार हुआ कि एम० एस-सी० कर लेना अच्छा

रहेगा। पर इसी बीच में दिल्ली से कुछ और ही आदेश प्राप्त हो गया। गो-हत्या बन्दी के लिए हस्ताक्षर संग्रह का कार्यक्रम देश भर में चलाया जाने वाला था। श्रीवर चमन लाल जी अस्वस्थ थे अतः उनका काम मुझे करना था सो मैं दिल्ली कार्यालय में रहने लगा।........................ ....

... .

जम्मू सत्याग्रह आरम्भ होने वाला था। मुझे डोडा ज़िला में नियुक्त किया गया। सत्याग्रह चला और खूब जोरों से चला।.........की वही चाल बेढंगी थी। जितना अपनी सोच समझ और सामर्थ्य से कर पाये उतना ही हुआ।

सत्याग्रह के दौरान में अनुभूत दो विषयों का वर्णन अलग २ करूंगा।

(१) **व्यक्तिगत** :—मुझे ऐसा लगा कि जिस हिन्दूधर्म की रक्षा का प्रण किया है उसका अध्ययन तो किया जाए। उपनिषद्, रामायण और गीता मंगवा ली और चलते फिरते ही एक बार तो पाठ कर लिया।

कामोत्तेजना की दृष्टि से यह वर्ष (२५) संभवतः बड़ा ही भयंकर सिद्ध हुआ। पतन के कई अवसर उपस्थित हुए, मन वश से बाहर हो गया। मैं तो मानता हूँ कि प्रभु की अपार कृपा से ही दूषित और अपमानित होने से बचा। मनसा तो

व्यभिचार करने में कोई कसर रही नहीं। ऐसा लगा कि शायद मेरे लिये काम के चंगुल से बचना असंभव है, अतः इस प्रकार के असंयत व्यवहार से रक्षित होने के लिए विवाह कर लेना चाहिए। परन्तु "आजीवन राष्ट्र कार्य की प्रतिज्ञा का क्या होगा," इसका ध्यान आते ही निराशा भी होती। परन्तु योग्य साथी मिल जाए तो ध्येयवादी जीवन अपनाया जा सकता है।

इस दृष्टि से कुछ योजनाओं पर विचार भी किया। एक तो यह कि दूर पहाड़ी क्षेत्रों में (ऐसी) शिक्षा का प्रसार किया जाए जिससे लोग तामसी जीवन छोड़, राजसी और सात्विक

जीवन अपनायें। इसके लिये अपने अन्दर एक आचार्य और मिशनरी की मिली जुली योग्यताओं का भण्डार होना चाहिए। कैसे होगा, यह प्रायः अस्पष्ट रहा।

(२) **संस्था :**—सत्याग्रह आरम्भ हुआ, चला, जी भर कर बलिदान हुआ, जी तोड़ प्रयत्न हुआ। और ऐसे बन्द हुआ मानो कुछ हुआ ही न हो। Nuisance की value अपने यहाँ भी है, इसका अत्यन्त कटु अनुभव हुआ। कुछ स्वार्थी परन्तु Nuisance उत्पन्न करने में समर्थ व्यक्तियों की प्रसन्नता के लिये इतने बलिदान की उपेक्षा देखने को मिली। बड़ी निराशा हुई।

मैंने पुनः एम० एस-सी० करने का विचार बनाया। बी० ए० (गणित) करने लुधियाना आया। यह कभी विचार व्यक्त न किया था कि प्रचारक न रहूँगा। परन्तु सिंदी के कार्यक्रम में न बुलाये जाने का अतीव दुःख हुआ।

मैं पुनः जम्मू लौटा और ज़िला डोडा में चला गया, या यूँ कहिए भेजा गया। लुधियाना से जब चला था तो ऐसी बातचीत हुई थी कि मेरे से विचार विनिमय कर जम्मू कार्य की योजना बनेगी परन्तु वहां कुछ और ही हुआ।

इसी बीच मैं बीमार हो गया। इलाज कराने श्रीनगर गया। ४००) रुपया उधार लिया। संघ कोष से बीमारी का इलाज

कराने में बड़ा संकोच होता था। ....।

बीमारी ठीक होने के उपरान्त मैंने लुधियाना में एम. ए. (गणित) में प्रवेश लिया। परन्तु दूसरे दिन ही केन्द्र की आज्ञा के अनुसार पढ़ाई छोड़ जम्मू चला आया। पिता जी ने बहुतेरा बुलाया पर मैंने स्पष्ट मना कर दिया। पर मेरे से जो बार २ पूछा गया कि अब मेरी क्या मर्जी है इससे मुझे बड़ा क्षोभ हुआ। (अपूर्ण)

—बलदेव

आ३म्

" यदि समय समय पर किए व्यवहार का ठीक ठीक व्योरा रखा जाय....

तो अपनी निधियां आँखों के सामने आ जाती हैं ... और कमियां आँख में तिनके के समान खटकने लगती हैं ।...

दैनन्दिनी

(१९५४-'५९)

दैनन्दिनी

"चाहता तो यह हूँ कि स्वेच्छानुसार एक नए ब्रह्माण्ड की ही रचना कर लूँ। पर चाहने मात्र से क्या हो सकता है। भवन तो पूँजी के अनुसार बनता है। जितनी पूँजी होगी उतना ही बड़ा भवन बन सकता है।

"भवन बड़ा न भी बने पर जितना बने उसमें ग्लानि का विषय किंचित्-मात्र भी न रहना ही श्रेयस्कर है।

"अब देखना यह है कि पास में पूँजी कितनी है और कितनी आवश्यक है, क्योंकि मैं जीवन-भवन को इतना उत्तम और आकर्षक बनाना चाहता हूँ कि जितना हो सके।

' जीवन को बनाने के लिए पूँजी होते हैं—गुण।...

' गुण की परख होती है व्यवहार से और व्यवहार प्रकट होता है रोज़ रोज़ की घटनाओं में। यदि समय समय पर किए व्यवहार का ठीक २ व्योरा रखा जाय तो अपनी निधियां आँखों के सामने आ जाती हैं और कमियां आँखों में तिनके के समान खटकने लगती हैं।

"बस मेरे जीवन की रूप-रेखा का आधार है-मेरा नित्यव्यवहार-व्योरा अर्थात् दैनन्दिनी।

"इसका सत्य, स्वच्छ और सदैव पूर्ण रहना कितना आवश्यक है यह इसके उद्देश्य से ही स्पष्ट है।"

१ जनवरी' ५४ —बलदेवराज

१

भावना : याचना : उद्गार

हे दयानिधान ! अपने विशाल मन्दिर में मुझ बालुकण का योग स्वीकार कर लो। प्रभो ! तुम तो जानते हो (और अब मैं भी जान गया हूं) कि मैं किसी भी प्रकार से बालुकण से बढ़ कर कुछ नहीं हूं। क्या मैं इस मन्दिर के निर्माण में कुछ भी सहयोग न दे पाऊंगा ? न, न प्रभो ! यह मेरे लिए असहनीय है। हे, दीना नाथ !....

१२ अक्तूबर '५८

प्रभो ! दो वर याचना करता हूं।

एक, सदैव कर्तव्यनिष्ठ रहूं। कर्तव्यपालन मुझ से सहजरूप से होता रहे। मोहवश कर्तव्यपथ से विचलित न होने पाऊं। क्रोधवश कर्तव्य मार्ग न त्याग दूँ। कामवश कर्तव्य का विस्मरण न हो जाए।

दूसरा, शारीरिक बल इतना दो कि कठोर से कठोर परिश्रम कर सकूँ। इंद्रियाँ और मन सदा मेरे वश में रहें।

भगवन् ! कहिए ना; तथास्तु !

८ जून '५६

प्रभो! आत्म-बल दो जिससे आत्मसम्मान की रक्षा कर सकूँ। पंख बँधे हैं, फिर भी उड़ना चाहता हूं।

८ अगस्त '५६

प्रभो! कब तक गिरता पड़ता रहूंगा। अब तो संभल कर चलना सिखा दो।

२८ मार्च '५६

हे प्रभु! ज्ञान दो, बल दो, या कुछ न दो और सब कुछ सम्भाल लो।

२२ फरवरी '५४

ॐ आनन्दमयी माँ ! जब जब तुम्हारा विस्मरण होता है तभी पतित होने लगता हूं । कहाँ चली जाती हो ? क्या तुम्हें अपनी सन्तान का ध्यान नहीं रहता ? मुझे अकेले छोड़ कर कहीं मत जाओ, माँ ! !

५ अक्तूबर '५८

●

मेरा भी क्या ही जीवन है,नित्य ईश्वर के नए रूप देखना । प्रकृति ही तो उसकी रचना है । जिसे उसकी रचना से प्रेम हो गया,क्या उससे न होगा ?

१८ अगस्त '५३

जीवन पथ क्या होगा ? क्या जानें ?
"इक ध्येय अचल है,
इक हृदय अटल है।"

२ एप्रिल '५८

●

जितना चिन्तन करता हूं, काम उससे कहीं कम कर पाता हूं। जितना चिन्तन होता है, उतना काम भी होना चाहिए, वर्ना समुचित विकास असंभव है। साथ ही, ऐसा न करने का अर्थ हुआ अपने प्रति असत्यता। कम से कम अपने प्रति तो सत्य व्यवहार कर लेना चाहिए।

२१ अक्तूबर '५८

I cannot proceed until I clean away my debts

I cannot work until I am self-dependent

I cannot work until I develop some art

I cannot work until I am a martial

And above all, I cannot work until I become confident that I am a true man of character.

२३ सितम्बर '५२

हृदय में अर्पण की तीव्र भावना थी। पर संशय था, भय था कि वे हमारी निर्धनता का विचार कर हमारी भेंट स्वाकार न करें। हम सोचते रहे कि उनकी युक्तियों का क्या उत्तर देंगे, उन्हें स्नेह की क्षुद्र भेंट स्वीकार करने के लिए कैसे मनाएंगे। .... पर उन्होंने कुछ कहा ही नहीं और चुपचाप मेरी भेंट स्वीकार कर ली !!!

१३ एप्रिल '५६

कुछ लोग ही ऐसे होते हैं जिनके पास बैठ जाओ तो उठने को मन नहीं करता। सौभाग्य से मुझे भी ऐसे मित्र मिले हैं।

४ मई '५६

'सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'

अतएव आज प्रजापरिषद् के मंच पर भाषण किया।

२५ मई '५६

तब सोचने में अपने को असमर्थ पाता हूं जब प्रियजनों को 'न' कहने का अवसर आता है।

२६ मई '५६

कर्त्तव्य पूर्ति के लिए सदैव तत्परता रहे। प्रभो! यह मार्ग कण्टकाकीर्ण है, इसे सुगम कीजिए।

६ जून '५६

नैतिक दृष्टि से पतित मनुष्य से चरित्र का प्रमाण-पत्र लिया ही क्यों जाए ?

×

'पारिवारिक बंधन' ऐसा क्या इस विचार से नहीं कहा गया कि पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाते हुए स्वच्छंदता विनष्ट हो जाती है ।

६ जून '५६

●

राष्ट्रीय कर्तव्य और पारिवारिक कर्तव्य एक दूसरे के पूरक ही हैं क्योंकि दोनों के हित परस्पर विरोधी तो हैं नहीं । फिर भी दोनों का पालन एक साथ करने में बड़ी कठिनाई लगती है । यदि कोई ऐसी व्यवस्था हो सके जिससे दोनों कर्तव्यों का साथ साथ निबाह हो सके तो क्या बात है ।

१७ जून '५६

नवीन प्रयोग के लिए असीम और अनुपम साहस चाहिए। प्रभो ! दो ना।

२६ जून '५६

धर्मशालाएं प्रत्येक नगर में होना कितना आवश्यक है।

२ जुलाई '५६

साथियों की सहायता का संकल्प तो कर लिया यह कोरी भावुकता न रहे और निश्चय फलवान् हो यही अभ्यर्थना है।

७ जुलाई '५६

आजीवन अविवाहत रह सकना सम्भव हो तो एक आदर्श जीवन बिताया जा सकता है, परन्तु इसकी दीक्षा किस से ली जाए ?

दूसरा मत यह भी है कि ऐसा (अविवाहित रहने का) विचार न किया जाए। यह आत्मग्लानि और पतन से सुरक्षा-मार्ग है, Safety Valve है।

९ जुलाई '५९

नया क्षेत्र है। कुछ दिन स्थिति का चुपचाप अध्ययन ही योग्य होगा।

(*Joined Hindu College Sonepat*)

२९ जुलाई '५९

Don't dwell in ideal conditions. Try to adjust according to the circumstances, but without any compromise on principles.

१३ जुलाई '५६

'Back to the villages' is the repeated voice of my intvition. O God! lead me to Light.

२४ जुलाई '५६

परिचय प्राप्त करने का क्रम चालू करना चाहिए। अपने साथियों और आस-पास के लोगों से जान-पहिचान हो जानी आवश्यक है।

२५ जुलाई '५६

३१ वर्ष का जीवन काल व्यतीत कर लिया परन्तु जीवन कार्य अभी तक वैसे का वैसा पड़ा है। अभी तक यह भी तय नहीं हो पाया कि कौन से मार्ग का अवलम्बन करके ध्येय प्राप्ति करनी है।

२६ जुलाई '५६

रहने की व्यवस्था हो जाने पर एक प्रकार का विशेष समाधान होता है।

२७ जुलाई '५६

अव्यवस्था से भी भला कोई काम हो सकता है ? फिर यदि अव्यवस्था के प्रति मन असन्तोष प्रगट करता है तो मेरा क्या दोष ?

२८ जुलाई '५६

ऐसा लगता है मानों मैं अभी गलत जगह पर हूं। जीवन कार्य की ओर पग बढ़ नहीं पा रहा।

३ अगस्त '५६

कठोर जीवन व्यतीत करने से मन घबराता है क्या? नहीं। तो कार्य क्षेत्र की ओर बागें मोड़ो।

४ अगस्त '५६

मन तो करता है कि अकेले ही कूद पड़ूँ और विचार किया हुआ प्रयोग आरम्भ कर दूँ। पर धन की समस्या बुरी तरह रास्ता रोके खड़ी है।

फिर सफलता होगी अथवा असफलता यह आशंका भी पाँव में बोझ के समान पड़ी है।

६ अगस्त '५६

आत्म निरीक्षण बड़ी बारीकी से करने की अनिवार्यता हो गई है। वर्ना हँसी सदा के लिए छिन जाएगी।

७ अगस्त '५६

तो क्या मैं मूलतः दुर्बल प्रकृति वाला हूं ? बचपन में ऐसा था, परन्तु पश्चात् मैंने निज मन को बलवान् बनाने के लिए बहुत से प्रयास जो किए हैं, उनके कारण कठिन काम कर लिए हैं। फिर भी पूर्वजन्म से Inherit की दुर्बलता का प्रभाव अभी अक्षुण्ण है क्या ?

२७ अगस्त '५६

निश्चय के पश्चात् निश्चय (यदि उन्हें निश्चय कहा भी जा सकता है) किए, अथवा अधिक सत्य होगा कि निश्चय बदले। मन की अस्थिरता एवं जीवन से भागने की इच्छा का रह रह कर सिर उठाना क्या प्रगट करता है ?

१५ अगस्त '५६

एक बार सारी विगत मनःस्थितियों का विश्लेषण कर भावी व्यवहार निश्चित करना चाहिए। निश्चय की स्थिरता हो सके और किसी भी बहाने दौर्बल्य की आवृत्ति न हो—यह देखना होगा।

१६ अगस्त '५६

आज देश में मिशनरियों की कमी क्या, अभाव सा है। सारी बातों की प्रतिक्रिया के बावजूद अभी भी मिशनरी बनने की इच्छा होती है। कुछ कर्तव्य निभ जाएं तो क्या ही अनुकूलता रहे।

२३ अगस्त '५६

●

गत जीवन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर लिया जाना चाहिए, परन्तु नहीं कर पाया, शीघ्र करना चाहिए।

२४ अगस्त '५६

Is not my present behaviour and attitude towards the surroundings of an uprooted man ? If so, I should find the ground to fix my roots.

२८ अगस्त '५६

●

प्रभो ! मेरी समस्या को जानते तो हो, मुझे दुविधा से मुक्त करो।

१२ सितम्बर '५६

●

अतिशीघ्र निर्णय करना होगा कि जीवन कैसे व्यतीत करना है।

६ सितम्बर '५६

Every action of mine should contribute to the attainment of the object of my life.

१० सितम्बर '५६

अतीत की स्मृतियाँ भुलाए भी नहीं भूलतीं। कौन मानेगा कि हम उन्हें कितना याद करते हैं? कष्ट के साथियों से इतना अधिक स्नेह हो जाएगा ऐसा अब प्रतीत होता है।

६ सितम्बर '५६

आज प्रातः उठने में आलस्य कर दिया। अब अपने आप को क्या कहा जाए!

६ फरवरी '५६

मुझे ऐसा साथी चाहिए जो सुसंस्कृत हो।

१५ फरवरी '५६

दसघण्टे पढ़ना, आठ घण्टे सोना, दोघण्टे शौच तथा नित्यकर्म, एक घण्टा भोजन, एक घन्टा शाखा और शेष दो घण्टे आकस्मिक कार्य–ऐसा नियम से करना वांछित है। समय की साधना केलिए ऐसा समय विभाग अनिवार्य है।

१२ फरवरी '५६

दैनन्दिनी न लिख पाना भी व्यस्तता का एक लक्षण है। अथवा एक यह बात भी है कि मनन नहीं हो रहा, जिसका निष्कर्ष पुनः व्यस्तता भी हो सकता है।

२५ फरवरी '५६

●

पूर्व विचार के विरुद्ध धन पास रखने का लोभ भी उत्पन्न हुआ। कितनी बुरी बात है !

१६ जनवरी '५८

●

जहाँ मुझे व्यय करना चाहिए, वहां मुझे ही करना चाहिए यह तो नितान्त सरल सी बात है।

१३ सितम्बर '५६

'देते हुए भी सामर्थ्य का ध्यान रखना चाहिए'
यह समझ अभी नहीं है, ना चाहिए।

१८ अगस्त '५६

●

समाज में वैभव सम्पन्न हो कर सम्पत्ति समाज के लिए लुटाना ही अच्छा आदर्श है। यह जन-साधारण का जीवन स्तर ऊंचा करेगा।

११ फरवरी '५४

●

मन और वाणी द्वारा किए गए मेरे संकल्प कर्म द्वारा शीघ्र ही प्रत्यक्ष हों।

२ दिसम्बर '५८

समय आ गया है कि अपने निश्चय की परीक्षा की जाए।

१७ नवम्बर '५८

अवसर पड़ने पर दिल-गुर्दे वाला ही साहस करता है और डरपोक पास खड़ा तमाशा देखता है।

२७ नवम्बर '५८

अपने नोट्स छुपाने का प्रयास मैंने भी किया, पर इसमे मन बैठ गया।

५ जनवरी '५८

२

निर्विकार शैशव

गुरुजनो ! आओ और मेरे मन की गुत्थी को सुलझाओ। मेरे संतप्त हृदय को तुम शान्त कर सकते हो, अपनी सहानुभूति से। मेरी कमियों का मेरे अपराधों की आड़ में, उपहास उड़ाने यदि आने हो तो भले ही न आओ। मुझे और मत दुखाओ, जाओ ॥

साथियो! तुम तो मेरे सुख-दुख के साथी हो। तुम तो बिन बुलाए चले आते हो और रोकने पर भी नहीं रुकते। तुम कड़वी बात कहो अथवा मीठी, उसे सुनने के लिए कान सदैव आतुर रहते हैं।

एक तुम ही हो जो कुछ भी कह सकते हो, भले हो उसमें से समस्या का हल न निकलता हो। तुम तो मेरे लिए दर्पण का काम करते हो। देखो तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तुम रूठ जाओगे तो मेरे लिए दुनिया रूठ गई। अतः तुम कैसे भी आओ, अवश्य आओ!

बच्चो! (मैं तुम्हें ऐसे सम्बोधित कर रहा हूं, बुरा न मानना) तुम मुझे तंग कर सकते हो, यह तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। तुम तंग नहीं करते तो मुझे क्लेश होता है। आओ, मुझे खूब तंग करो। लेकिन यदि कोई मेरा व्यवहार भाता नहीं तो उसकी उपेक्षा कर दो, मेरे से उसका कारण मत पूछो।

●

छर्व्वीस

पीठ पीछे चुगली करने वाला चाहे छोटा हो या बड़ा या बराबर का मुझे अच्छा नहीं लगता।

२०-२१ सितम्बर '५८

●

बचपन में,

अपने ही भाई अथवा बहिन को जब मां से डांट पड़ती है तो कैसी अद्भुत प्रसन्नता होती है।

२२ फरवरी '५६

●

बच्चों की जो अभिलाषा हो उसे पूरा करने में सदैव उद्यत रहो। वे निर्विकार होते हैं, निर्मोही होते हैं।

६ मार्च '५६

बच्चों के लिए कुछ न ला सका इसका क्षोभ ही होता रहा।

१४ अप्रिल '५६

●

बच्चे चुस्त चालाक हों तो बहुत प्यारे लगते हैं परन्तु बड़े होकर उनकी चुस्ती क्या कर बैठेगी इसका कोई ठिकाना नहीं। इसलिए सावधान होकर बच्चों को सब योग्य संस्कारयुक्त बनाना परमावश्यक है।

●

१ मई '५६

बच्चों के सामने बड़ों के दोषों का बखान नहीं करना चाहिए। कभी किसी को मूलतः दुष्ट नहीं मानना चाहिए।

१२ मई '५६

३

संस्कार : समस्याएं : कर्मठता

संस्कार ! संस्कार !! संस्कार !!!

बालपन में भक्ति और बलिदान के संस्कार, किशोरावस्था में ब्रह्मचर्य के संस्कार, युवावस्था में ध्येयवादिता के संस्कार।

यह सब हो तो व्यक्ति कुमार्ग पर भूलकर चला भी जाए तो संस्कार उसे जबरदस्ती सही मार्ग पर ला पटकेंगे।

★ २६ जनवरी '५९

माता पिता अपनी संतान पर बाल्यकाल में जो संस्कार डालना चाहते हैं, डाल लेते हैं क्योंकि संतान उनका अपना अंश होता है। ऐसी अपनत्व की भावना जो कोई हृदय में रख सकता है, वह भी संस्कार करने में वैसे ही समर्थ है।

★

संस्कार यदि मोहरहित हों और ज्ञान युक्त हों तो आयु भर दृढ़ रहते हैं और संस्कारित व्यक्ति निश्चय ही अभ्युदय और निश्रेयस को प्राप्त होता है।

★

संस्कारी पुरुष सदा विजयी होता है—महान् विजेता।

२७ जनवरी '५६

चरित्र हीनता के कारण दिल कमजोर होने स्वाभाविक हैं।

६ जून '५२

★

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन जड़ित हिम पर चलने से कम नहीं है।

विचारणीय बात तो यह है कि निष्प्रयोजन कामक्रीड़ाओं का चिन्तन करके वीर्य स्खलित क्यों किया जाए, धर्माचरण ही श्रेय है।

१६ सितम्बर '५८

संयम—मन, वाणी अथवा इन्द्रियां का—में एक मोहनी शक्ति होती है। जहाँ तक हो सके किसी को उद्विग्न न करना चाहिए।

★ २६ अक्तूबर '५८

The man who has practised control over himself cannot be acted upon by anything outside there is no more slavery for him His mind has become free; such a man alone is fit to live well in the world

The calmer we are and the less disturbed our nerves, the more shall we live, the better will our work be.

❀ ❀ ३० अक्तूबर '५८

इन्द्रिय संयमन एक कठिन साधना है। सयमी ही साहस कर सकता है कि अपनी हर इच्छा को पूर्ण करने के लिए उद्यत हो सके। और, संयमी का उद्यम ही सफल होता है।

One, Who can, does;
One, Who can't teaches

G. B. S.

२८ सितम्बर '५८

काम भावना उत्पन्न होने पर काम-क्रियाओं का बारीक विश्लेषण करने से भी संयम लाभ किया जा सकता है। परन्तु काम उद्दीप्त होने पर विवेक रह पाए तो ही यह सम्भव है।

२६ सितम्बर '५८

कामः नाशनमात्मनः। एवं ज्ञात्वा अपि मनः अस्थिरं चञ्चलं निश्चरति येन दुःखं ग्लानिं चाप्नोति। प्रभो! शिव!! रक्ष माम्।

१३ नवम्बर '५८

कामोत्तेजना को वशीभूत करना असंभव है क्या? इसके लिए किसी से शिक्षा लेनी चाहिए।

२ अगस्त '५६

काम ही उत्कर्ष और निश्रेयस का सतत शत्रु है। यह प्रबल शत्रु है, इसका नाश तो कभी होता नहीं क्योंकि यह अनङ्ग है, इसलिए इससे बचने के लिए सदा जागरूक प्रहरी की आवश्यकता है।

२० अगस्त '५६

●

'अनिर्वेदः श्रियो मूलम्,' यदि एतत् ततः पुनः यत्नः करणीयः, येन कामस्य शमनं भवेत्। अनेन जाता भगवद्विरुद्धेच्छा क्रिया चापि विनश्यति, एतत् सुखस्य मार्गम्।

२५ अगस्त '५६

हृदय में बसे हुए काम और वासना को नाग समझो। उससे छेड़छाड़ मत करो। यह सोचना मूर्खता है कि "मैं बड़ा चतुर हूं, मैं क्यों डरूँ? मैं नियत सीमा के अन्दर रहूंगा और उसके आगे नहीं जाऊँगा तो उससे मेरा क्या बिगड़ेगा?" नाग के पास जाकर उसे छेड़ोगे तो वह काटेगा ही। इसलिए सदैव हृदय में ईश्वर का जप करते रहो।

२१ नवम्बर '५८

●

निज के चारित्र्य के राज्य के निर्भीक और अत्यन्त विश्वसनीय गुप्तचर हैं—स्वप्न।

१८ नवम्बर '५८

As soon as something undesirable crops up in the mind curb it down immediately, otherwise it may occupy so one's mind as to make it impossible for one to get out of it.

So be alert—दक्ष।

१७ अक्तूबर '५८

यदि कारण अनुकूल न हो और ज्ञान अधूरा हो तो ज्ञेय पर ध्यान स्थिर कर साधना करनी चाहिए और ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील व उचित समय की बाट देखनी चाहिए। निराशा व्यर्थ होती है और घातक है। ध्येय से विमुख किसी भी दशा में हुए तो प्राप्त उच्चता से फिसलना शुरु हो जाता है।

१६ मार्च '५४

Irregularity has a great inertia. To overcome it, a single pointed obstinacy should be applied immediatly.

९ दिसम्बर '५८

●

Irregularity, however permitted once, triggers irregularity in every field of daily life, and regularity regulates life.

१५ नवम्बर '५८

नियमित तथा व्यस्त दिनचर्या होनी चाहिए जिसमें कि जीवन-कार्य का तांता नज़र आए ।

७ सितम्बर '५६

यःकामक्रोधो द्भवं वेगं शरीरविमोक्षणात् प्राक् सोढुं शक्नोति,स एव हि नरः युक्तः स सुखी । (गीता)

१८ सितम्बर '५६

सिद्धि के लिए महान् अपि च अविरल यत्न की नितान्त आवश्यकता है, वर्ना गिरने की सम्भावना रहती ही है और उठने-गिरने का क्रम चलता रहता है, कोल्हू के बैल सी दशा हो जाती है और व्यक्ति निरन्तर विकास के एकमेवानन्द से वंचित रहता है ।

५ अक्तूबर '५८

It is struggle against nature and not conformity with it that makes man what he is.

२ दिसम्बर '५८

●

अपने में निहित गुणों को जानकर उन्हें प्रकाश में लाना चाहिए। फिर उनका समुचित विकास करने के हेतु यत्नशील रहना चाहिए।

२ फरवरी '५६

●

निर्धारित कार्य में न्यूनता निश्चय ही है और यही आत्म संयम की कमी का कारण भी हो सकता है।

५ फरवरी '५६

बात तो सारी मन की है। मन के शमन से इन्द्रियों का शमन स्वयमेव हो जाता है।

७ फरवरी '५९

●

मन का नियमन कर इसे अपने वश में रखना मानों वायु की गठरी बांधना है। अभ्यास और पुनरपि अभ्यास, सिवा इसके कोई रास्ता भी तो नहीं।

५ दिसम्बर '५८

'मन अनुशासित करना' यही एक कठिन कार्य है और यही एक कार्य है।

१४ सितम्बर '५९

संयमित व्यवहार सम्यक् और वाँछित रूप से तभी होता है जब भावनाएं संयम में होती हैं। वरन् दो ही बातें होती हैं—उथलापन अथवा औपचारिकता।

१ एप्रिल '५६

ध्येय के विशाल होने से उसकी प्राप्ति के लिए यत्न भी विशाल होते हैं परन्तु उस प्रकार केन्द्रित नहीं हो पाते जैसे ध्येयबिन्दु पर पहुंचने के लिए होने वाले।

केन्द्रित यत्नों की गति भी विशाल यत्नों की गति की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

८ फरवरी '५६

इन्द्रिय संयम तो कठिन नहीं है' कठिन है मनः-संयम। विचारों की पवित्रता इतनी ही कठिन है जितना सरल विचार प्रवाह–जब जिधर चाहे बह निकले। इस प्रवाह के किनारे नहीं हैं जो इसे बांध सकें। इस प्रवाह का नियमन तो ध्येय की लगन से ही सम्भव है। विचार उधर ही चलते हैं जिधर मन की .लगन होती है। अतः मन की लगन उधर ही समझनी चाहिए जिधर विचार बहते हों,मन के धोके में न आना चाहिए, सावधान दक्ष !!

१८ फरवरी '५६

शरीरको जेसा रखो वैसे ही रहना सीख जाता है। इसे तो भूख तब लगती है जब कुछ मिलने का आश्वासन रहता है। इसे बता दो कि अमुक समय अमुक मात्रा में भोजन मिलेगा, या यह कपड़ा मिलेगा, यह नहीं मिलेगा—यह अधिक नहीं मांगेगा।

१६ फरवरी '५६

●

आहार का संयम भी आसानी से सिद्ध नहीं होता।

२२ मई '५६

असंयत व्यवहार क्या किसी की प्रेरणा अथवा आग्रह से करना मानसिक दुर्बलता का परिचायक नहीं ?

१५ जून '५६

●

बुद्धि का निर्णय, मन न तो आसानी से मानता है और न ही मान लेने पर भी उसे स्वीकार करता है। इसीलिए इन्द्रिय संयम को अंगीकार करने के लिए अति अभ्यास की आवश्यकता है।

१ जुलाई '५६

●

उभरते सद्भाव के रास्ते को बेरोक (frictio-nless) कर दो।

१ मार्च '५६

'क्या करूँ क्या न करूँ' की अवस्था पार करना भी एक प्रकार का योग साधन ही है। इस के लिए निश्चय और संकट का सामना करने का साहस, दोनों चाहिए। विवेक तो साधन साध्य ही है।

१५ मई '५९

●

'क्या होगा' इससे भय मानकर विचलित होना मूर्खता ही तो है।

●

८ मार्च '५९

कठिन परिस्थिति वीर हृदय को चुनौती है।

६ एप्रिल '५९

भीषण परिस्थिति कर्मठता को चुनौती है।

७ एप्रिल '५६

परिश्रम से जीवन का स्तर ऊंचा होता है। जब कोई अपने से निम्नस्तर के व्यक्ति से श्लाघा करता है तो स्पष्ट है कि वह परिश्रम से जी चुराता है। वह उस समय तमोगुण के प्रभाव में रहता है।

अतः सावधान! सदैव परिश्रम करो और उत्कर्ष को प्राप्त करो।

१० मार्च '५६

लड़ते जाओ, लड़ते जाओ, लड़ते जाओ.... .... जब तक विजय प्राप्त न हो।

१७ मार्च '५६

सततं नीतिमार्ग अनुचरेम् ।

१९ मार्च '५९

●

हे परमकृपालु ! मेरी बुद्धि को सदैव सही मार्ग पर लगाओ, इसे कभी कुमार्ग पर विचार मत करने दो।

३० मार्च '५९

●

वहमी होना कोई बड़ी बात तो है नहीं; अच्छी बात भी नहीं है।

❀ ❀ ❀

१२ फरवरी '५९

ब्राह्म-मूहूर्त्त में उठ न पाना भी कितने दुर्भाग्य की वात है। परन्तु एक गाड़ी से छूटा हुआ यात्री दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकता है।

९ फरवरी '५९

प्रत्येक सात्विक गुण की साधना विना तप के नहीं हो पाती। प्रातः काल ब्राह्म मुहूर्त्त में उठने की बात ही देखिए-कितना आनन्दकर होता है पर फिर भी तामस-आलस्य के कारण मन सवेरे उठते समय कितने बहाने बनाने लगता है।

१४ फरवरी '५९

प्रमाद से सावधान ! इससे तर्क मत करो। पहले इसे दूर हटाओ, फिर सोचना हो तो सोचो कि जो किया सो उचित किया कि नहीं।

१७ फरवरी '५६

●

वचन भंग अपराध है।

१० एप्रिल '५६

●

कुरेदो ! सम्भव है चट्टान में से पानी निकल ही आए।

१७ एप्रिल '५६

कर्त्तव्य पालन कितना कठिन है और कितना सरल है। मन के निश्चय से ही कठिन सरल हो जाता है।

५ मई '५९

●

एकांत रहना भी अच्छा नहीं। परछिद्रान्वेषण जैसा दुर्गुण एकान्तवास से उत्पन्न हो सकता है।

६ मई '५९

●

भाग्य की बात अपने वश की बात तो होती नहीं, इसे नहीं सोचना चाहिए। इस प्रकार बेकार की व्याकुलता उत्पन्न नहीं होती।

१९ जून '५९

जीवन कार्य की कल्पना स्पष्ट रहे कर्त्तव्य पूर्ति के लिए ही जीवन लगे; यही सुख और शान्ति का मार्ग है।

२५ जून '५६

सम्राटों के सम्राट् को आत्म समर्पण करने में कितनी सुरक्षा है परन्तु फिर भी यह कितना कठिन लगता है। क्या इसे ही मोह नहीं कहा जाता ?

जैसे भी हो सत्य मार्ग का अवलम्बन निःशंक हो कर करना ही श्रेयस्कर है - यही कर्त्तव्य है।

३० जून '५६

जो हृदय में हो वही वाणी पर आना चाहिए। कोरी भावुकता घातक है। जो कहा वह कर दिया तो सत्य निष्ठा प्राप्त होती है।

८ जुलाई '५९

●

जिस काम को करने से सब हिचकिचाएं उस का बीड़ा उठा लेना साहस का ही काम है।

१४ जुलाई '५९

●

'यदि मैं उच्च पदासीन होता तो यह करता.' ऐसी बातें बनाने की अपेक्षा अपने को वर्तमान पदवी के योग्य सिद्ध करने का प्रयास करें।

१५ जुलाई '५९

जो कार्य करना ही है उसके लिए असमंजस कैसी ? हंसते हंसते सब काल निभाते जायें।

१७ जुलाई '५६

Be cautious while making commit-ments.

१८ जुलाई '५६

Oh God ! Let me be as much expressive as active.

२० जुलाई '५९

कर्म फल प्राप्त होकर ही रहता है अतः यह चिन्ता करना कि मुझे अमुक वस्तु कैसे प्राप्त हो, व्यर्थ है। बस कर्त्तव्य कर्म प्रामाणिकता से करें।

२३ जुलाई '५९

प्रत्येक विषम स्थिति में धैर्य रखना कोई सरल बात नहीं। इस के लिए मानसिक बल के साथ २ योग्यता तथा कुशलता भी अनिवार्य है।

३१ जुलाई '५९

समस्यायें ही मनुष्य को उत्कर्ष की ओर ले जाती हैं। कठिन परिस्थितियां गुणों का विकास तीव्रता से करती हैं। कर्म की उग्रता ही वाञ्छनीय है।

११ अगस्त '५९

उत्तरदायित्व और स्वाभिमान, दोनों की रक्षा करने के लिए शान्तचित्त होकर विचार पूर्वक कुशलता से हल निकालना चाहिए। उत्तरदायित्व बहुत कुछ सहना सिखा देता है कर्त्तव्य पूर्ति केलिए भावनाओं को कभी कभी समेट कर रखना अनिवार्य हो जाता है।

९ अगस्त '५९

●

कार्यक्रम की बार बार अदलाबदली ठीक नहीं बे पेंदे के लोटे जैसी स्थिति हो जाती है।

सब के साथ–विरोधी अथवा सहयोगी–सहृदयता का व्यवहार ही श्रेय है।

१० अगस्त '५९

दिनचर्या बड़ी रोचक हो जाती है यदि जीवन में स्थिरता हो —

Because a man with an aim commits much less errors than that who does not have one.

२६ अगस्त '५६

●

When something is totally refused to the mind, it tries to adjust accordingly. It is shaky only when it is allowed certain options. So never have decision from the mind but give him decisions.

३० अगस्त '५६

दण्ड के भय से जो बुरा काम न करे उसके अच्छा होने में सन्देह ही होता है।

३१ अगस्त '५६

The best state of mind is the decided state One should be clear as to what to do and what not to do.

३ सितम्बर '५६

मद्यपान अथवा अन्य दुष्कर्म में सहयोग देना भला किसे वाञ्छनीय हो सकता है।

३ एप्रिल '५६

●

दिल से बुरा कोई नहीं होता, यह तथ्य सदा ध्यान में रहे तो बड़ी सरलता से समस्याएं उत्पन्न होते ही मर जाती हैं।

❀ ❀ ❀

४

समाज और हम

गीदड़ के शिकार में शेर का सामान पास में होना चाहिए।

वैधानिक तरीके असफल हो जायें तो स्वयं स्वराज्य स्थापित करने की योग्यता निर्माण करें।

२ जून '५२

●

कार्य आरम्भ करने में जितना उत्साह दीखता है उतना कार्य जारी रखने में रखना आवश्यक है। उस के लिये सतत प्रहार की आवश्यकता है।

४ जून '५२

जलसों में भाषण द्वारा प्रचार अवश्य होता है पर क्रियात्मक रूप तो एक एक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित कर उन सब के हृदय परिवर्तित करने पर प्रगट होता है । फिर भाषण में कहे दो शब्दों का भी अमित प्रभाव हो सकता है ।

५ जून '५३

●

गरीब की भला सेवा कोई क्यों करने लगा । उस से कोई स्वार्थ पूर्ति थोड़े होती है ।

१५ फरवरी '५८

विधवा की जो पूजा होनी चाहिए वह आज होती नहीं और इकत्र हुआ ज़हर 'हिन्दु कोड बिल' के रूप में फूट रहा है।

१६ मार्च '५४

●

सुभाष बोस शून्य में से निर्माण का विश्वासी कर्मठ पुरुष था।

डरना मूर्खता है।

२३ जनवरी '५८

स्मरण शक्ति, और एकाग्रता–दोनों केलिए मन को स्थिरता होनी आवश्यक है। अभाव-पूर्ति के लिए दौड़ धूप तो करना यथेष्ट है परन्तु किसी भी अभाव के कारण अपने को भाग्यहीन समझना अथवा दुःखी होना, पूर्वकृत्यों को इस के लिए दोषी ठहराना, यह सब खतरनाक है। कोई भी इष्ट रहे उसे पाने के आवश्यकता पड़ने पर केवल उसी के लिए प्रयत्न करूंगा– ऐसा विचार होना चाहिये। हड़बड़ाहट नहीं चाहिए॥

३० सितम्बर '५८

उत्तरदायित्व निभाने में सामर्थ्य की कमी का बहाना योग्य नहीं . जैसे भी हो बान्धवों का दु:ख बटाना चाहिये। दु:ख दूर तो भगवान् ही कर सकता है। यदि अपने से किसी का दु.ख दूर नहीं हो पाता तो भी उसका दु:ख बांटा तो जा सकता है। दु:खी के पास बैठना तो चाहिए। कुछ न बन पड़े तो सहानुभूति के चार शब्द तो कहे ही जा सकते हैं– इस के लिए भला कजूसी कैसी?

१ अक्तूबर '५८

Those who want to help mankind must take their own pleasure and pain, name and fame, and all sorts of interests, and throw them into the sea and then go to the Lord. This is what all the masters said and did.

६ नबम्बर '५८

●

कम से कम एक व्यक्ति को तो स्वधर्म की दीक्षा देनी चाहिए। इसी भान्ति बिछुड़े बंधु पुनः मिलेंगे।

१६ फरवरी '५६

हमने अपने त्योहारों को इतना गन्दा कर दिया है कि स्वयं भी घृणा उत्पन्न हो जाती है, फिर अन्य जाति के लोगों का क्या कहना।

२४ मार्च '५६

मुझे भूख लगती है तो मेरे साथियों को भी अवश्य लगती होगी। ऐसा सोच कर सबके खाने के लिए प्रबन्ध करें।

३१ मार्च '५६

हमारे कुछ रीति रिवाज ऐसे हास्यास्पद हैं कि कुछ बात ही नहीं। जितनी जल्दी हो सके इन्हें बदलना चाहिए।

३ मई '५६

●

पेट की खातिर अनीति मार्ग पर क्यों चला जाए, यह भी तो पातक ही है।

१२ जून '५६

जब तक पैसा है तब तक सम्बन्ध रह सकते हैं, कर्त्तव्य भी निभाया जाता है। परन्तु कर्त्तव्य निष्ठा की परीक्षा तो निर्धन अवस्था में हो सकती है।

१३ जून '५६

●

When the nucleids are not indistinguishable, how to expect the orbital members united–man to man.

२७ जून '५६

नए परिचय प्राप्त करते रहना चाहिये इस से आत्मीयता बढ़ती है और अधिकाधिक व्यक्तियों में आत्मदर्शन होता है।

३ जुलाई '५९

उनहतर

५

उच्छृंखल राज्य : त्रस्त समाज

जनता में भय है, आशा है पर पूर्ण विश्वास नहीं; फिर दृढ़निष्ठा कहां ! विश्वास उत्पन्न होते ही सब दुःख ऐसे भागेंगे जैसे गधे के सिर से सींग।

२ जून '५२

जो शासन पसन्द नहीं, अनुकूल नहीं उसे बदल डालो।

५ जून '५२

रिश्वत दूर करने का उपाय हाथ काटना ही है। मनुस्मृति में यही लिखा है।

१० जून '५३

ध्यान को खेतों में मिल कर काम कर रहे नर नारियों के देशभक्ति पूर्ण मधुर गीतों ने आकर्षित किया। हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। सचमुच इस प्रकार यदि सारे देश के किसान खेतों में मिल कर काम करें और मातृ स्तवन करते हुए वातावरण को पवित्र बना दें तो इस प्रकार उत्पन्न हुए अन्न को खा कर भला देश के आबाल-वृद्ध जन्म-भूमि पर प्राण क्यों न वार देंगे।

८ जुलाई '५३

स्वतन्त्रता वास्तव में जनतन्त्र का नाम नहीं, परन्तु राज्य और जनता में भेद मिटाना ही इसका प्रमुख लक्षण है।

२४ मार्च '५४

भोजन करते समय भाषा-समस्या पर चर्चा हुई। जनसाधारण का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट है क्यों कि इस पर पदलोलुता का आवरण नहीं। नेतागण से त्रस्त समाज है आज का।

२ जनवरी '५८

We must know Hinduism, We must have a clear picture of the future set-up of our society. And finally we must be able to point our aspirations thickly and brightly. Then only can we revive our culture.

९ अक्तूबर '५८

●

Revolutions go from bottom to top but evolutions travel from top to bottom. Thus those are the great thinkers of time who are able to control the way of life of the man-kind.

१८ अक्तूबर '५८

The ministers whose object is to remain in the good books of their chief boss cannot dare express their true feeling at the moments of policy-framing and in the presence of the Boss their conscience is, as if, electrocuted. This is the signal for the ruin of the governers as well as of the governed.

२६ जनवरी '५६

जब हम अपनी संस्था के किसी नेता के किसी निर्णय को देशहित के प्रतिकूल समझते हैं तो उस का उचित विरोध करने का साहस क्यों नहीं जुटा पाते ? और ना ही उस निर्णय को पलटने (undo करने) का यत्न करते हैं। "पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ चेतः।"

३ फरवरी '५६

●

न्याय धनी अथवा निर्धन में भेद नहीं करता। नियम भग करने वाले को दण्ड देना राजा का धर्म ही है।

१३ मार्च '५९

संस्कृत की मधुरता सभी स्वीकार करते हैं फिर भी अंग्रेजी का संस्कार टिका होने के कारण अभी जीवन पर संस्कृत का प्रभाव पड़ा नहीं।

२५ एप्रिल '५६

❀ ❀ ❀

६

जीवनोद्देश्य

आज शाखा नहीं गया, यही बड़ा अपराध हुआ।

६ जनवरी '५८

●

शाखा में नियमित जाऊं तो कार्य भार लूं।

२१ सितम्बर '५६

●

हम शिक्षकों का वर्ग अथवा पीढ़ी ही चाहते हैं।

५ मार्च '५६

कलकत्ता में वार्षिकोत्सव हुआ, स्वयंसेवक जनता देखी।

५ एप्रिल '५६

To be a missionery is the mission of life.

११ एप्रिल '५६

प्रचारक जीवन का विचार आते ही मन का सन्तोष लौटना आरंभ हो जाता है—ऐसा लगता है कि मैं कोई स्वाभाविक बात सोच रहा हूं। प्रभो! पथ आलोकमान् करो ताकि निःशंक हो कर बढ़ सकूं।

१७ अगस्त '५६

अनभ्यासे संचिताः गुणाः अपि क्षीणाः भवन्ति । इदं तथ्य मया अतीव विचारणीयं अस्ति । लोकसंग्रहार्थं जनसम्पर्कः अत्यन्तावश्यकः अस्ति, तन्न त्यजेत् ।

२७ अगस्त '५६

❀ ❀ ❀

उनआसा

७

लोक व्यवहार : स्नेह विस्तार

चिढ़ कर व्यक्ति आत्म-सम्मान खो बैठता है।

३ जून '५३

●

मन क्रुद्ध हो तो चुप रहना ही श्रेयस्कर है।

●

दीर्घ सोच में खलबली आती नहीं।

४ जून '५३

अव्यवस्थित कार्य और उस में भी अधीरता खले न तो और क्या हो ?

—

बिना बहस के बाधाओं में से मार्ग निकालने की योग्यता होनी चाहिए ।

४ जनवरी '५७

●

भोजन मन्दगति से परोसा जा रहा हो तो चम्मच अनिवार्य हो जाता है ।

१ जनवरी '५८

कभी कभी किसी को जानबूझ कर भी नाराज़ किया जा सकता है अर्थात् इसका भी विधान है।

५ अक्तूबर '५८

अतिथि सेवा जब भार स्वरूप होने लगती है तो यह निर्णय नहीं हो पाता कि ऐसा सेवा-भाव की कमी के कारण है अथवा आर्थिक कठिनाई की यथार्थता इस के लिए उत्तरदायी है। कुछ भी हो, जो कुछ भी किया जाए प्रसन्नता पूर्वक करना चाहिए। खिन्नता से खिन्नता ही प्राप्त होगी।

२२ अक्तूबर '५८

जहाँ तक हो सके किसी को कुछ न कहना ही अच्छा है, उसे स्वयं समझने का अवसर देते रहना चाहिये।

२३ अक्तूबर '५८

●

जिस बात के कहने से मिथ्या भ्रम उत्पन्न हो सके, ऐसी बात न कही जाय तो कम से कम पश्चाताप नहीं होता।

२८ अक्तूबर '५८

●

सब साथियों के प्रति समदृष्टि न होने से अपना ही आदर कम होता है।

३१ अक्तूबर '५८

अपने उर का सारा स्नेह लुटा दो, फिर देखो बिछुड़े भी आ आकर गले मिलेंगे।

१६ नवम्बर '५८

●

गले पड़ा ढोल बजाना तो पड़ता ही है परन्तु फाड़ कर फेंका भी जा सकता है।

२८ नवम्बर '५८

●

स्नेहासक्त बान्धवों में भी ईर्ष्या हो जाती है —त्याग की दौड़ में।

२८ नवम्बर '५८

स्पष्टवादिता तो सदा अच्छी ही होती है पर कभी कभी बहुत अच्छी होती है।

८ दिसम्बर '५८

●

जैसे आगन्तुक को टाला नहीं करते वैसे ही आए पत्र को नहीं टालना चाहिए।

१४ मार्च '५९

●

जहां देने का अवसर आए वहां हाथ संकुचित न करो जितना है वह तो दे दो, आगे का ईश्वर मालिक है।

१९ एप्रिल '५९

कभी २ आतिथ्य के अभाव को छिपाने के लिए औपचारिकता की आड़ ली जाती है पर वास्तविकता कहां छिपती है ।

२९ एप्रिल '५९

●

आग्रह को न टालना भी श्रेयस्कर है क्योंकि कम से कम इस प्रकार संबन्धों में दृढ़ता आती है।

२ मई '५९

●

कभी २ तर्क द्वारा किसी की बात का लाजवाब उत्तर देने की अपेक्षा चुप रहना अथवा नम्र हो जाना श्रेयस्कर रहता है और दूसरे को अपनी भूल भी अनुभव हो जाती है ।

१. मई '५९

प्रत्येक वृत्ति का भी समय होता है। वयः-प्राप्त पुरुष को बचपना अच्छा नहीं लगता।

१० मई '५९

परिवार में व्यक्तियों की परस्पर शत्रुता तो होती नहीं केवल सहनशीलता का अभाव पवित्र सम्बन्धों को दूषित कर देता है।

११ मई '५९

बिन बुलाए किसी के घर जाना उचित नहीं। इस से स्वयं का निरादर तो होता ही है पर कई बार पश्चाताप की अग्नि में भी जलना पड़ता है।

१४ मई '५९

कभी कभी ऐसा लगता है कि सहनशीलता क्या केवल उपदेश करने मात्र के लिए है।

१७ मई '५९

●

When a permanent solution is not feasible, makeshift arrangement is the only escape.

१९ मई '५९

बड़ों का स्वभाव नहीं बदला जा सकता। हमें ही उन के साथ योग्य रीति से adjustment करनी चाहिये। उनके दुर्गुणों से हम बचे रहें और मौन रह कर उन के क्रोध का भी शमन करते रहें।

पृथ्वी को देखिए कितना बोझ सम्हालती है– असीम।

२९ मई '५९

पता नहीं स्त्री-स्वभाव इतना परछिद्रान्वेषी क्यों होता है ? इस में आत्मनिरीक्षण का तो प्रायः अभाव ही रहता है।

—

सहानुभूति से किसी बात का हल निकालना यह शायद स्त्री स्वभाव के विरुद्ध है, प्रतिकूल है। इसलिए परिणाम होता है—गृह कलह।

२ जून '५९

●

कमल के डण्ठल को कोई तोड़ भी दे तो भी उसके तार आपस का सम्बन्ध बनाए रखने का असीम प्रयत्न करते हैं।

१० जून '५९

कहते हैं दुनिया आशा पर कायम है, पर आशा से ही सम्बन्ध बिगड़ते हैं। निराशीवृत्ति से मन का सन्तोष बना रहता है और इधर उधर की बातें इसे उद्विग्न नहीं कर सकतीं।

१८ जून '५९

●

जहाँ तक हो सके अधिक से अधिक व्यक्तियों को अपनाने का यत्न करते रहना चाहिए, किसी प्रत्याशा से नहीं।

१६ जून '५९

जो नहीं करना चाहते वही कर बैठते हैं। इसलिए यह मत सोचोकि हमें क्या नहीं करना है। यही सोचो कि हमें क्या करना है।

१८ जून '५९

●

अपरिचित स्त्री के प्रति सहानुभूति प्रकट करने से पूर्व दस बार सोचना चाहिये और अत्यन्त संयत व्यवहार करना चाहिए।

२२ जून '५९

●

टीका टिप्पणी करने वाले को सदा बगल में बिठा रखो। इस से पतित होने की सम्भावना बहुत घट जाती है।

२३ जून '५९

जिम्मेवारी को कर्तव्य जान कर निभाया जाए तो कार्य सरल हो जाता है। जिम्मेवारी तो उठाई जाती है, इसलिए नहीं भी उठाई जा सकती। किन्तु कर्त्तव्य तो अनिवार्य है।

२६ जून '५६

●

किसी को मिलने जायें तो खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। कुछ न बन पड़े तो दो फूल ही ले जायें।

●

२८ जून '५६

बिना किसी मतलब के ही स्नेह संबन्ध बने रहें तो सर्वोत्तम है।

६ जुलाई '५६

निमन्त्रण देने में पिछड़ना नहीं चाहिए। इस से पुरानी मित्रता हरी हो जाती है।

११ जुलाई '५९

●

जो हमें सहारा देने के लिए बांह दें, हम उन की बांह हड़प ही न कर जायें, यह ध्यान रहे।

●

२१ जुलाई '५९

दूसरों के कर्त्तव्य की अत्यधिक चिन्ता करना अथवा यूं कहिए कि टीका टिप्पणी करना मनुष्य की दुर्बलता है।

२२ जुलाई '५९

जब तक कोई बात पूरी नहीं होती उसे मन में रखो, व्यक्त करने का कोई अर्थ नहीं।

२६ जुलाई '५६

"As you will behave so you shall be treated."

१ अगस्त '५६

सम्बन्धित व्यक्ति से बिना बात किए सुनी सुनाई के आधार पर धारणा बना लेना कितना दुःखदायी हो सकता है, यह तो इस दुःख से पीड़ित ही जान सकता है।

२२ अगस्त '५६

कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निर्णय अति कठिन है। यह तो एक कला ही है।

१५ सितम्बर '५६

●

कुछ काम दूसरों की प्रसन्नता मात्र के लिए भी करने होते हैं। इस प्रकार बेकार की परेशानी टल जाती है।

१६ सितम्ब '५६

●

जहाँ स्नेह हो जाता है वहां 'न' करने से कितनी पीड़ा होती है।

१७ सितम्बर '५६

❀ ❀ ❀

८

आत्मोन्नति : अपनी बात

इष्ट देव की पूजा उसे षोडश कला संपूर्ण ब्रह्म समझ कर करनी चाहिये न कि ऐतिहासिक महापुरुष मान कर।

३० मई '५२

●

नारी वास्तव में उसी दिन पागल हो जाती है जब उस का पति मर जाता है।

१६ मार्च '५४

A bad man is worse when he pretends to be a saint.

२० मार्च '५४

●

जो जीवन भर निभ सकें तथा अखण्डित चल सकें ऐसे व्रत ही लेने श्रेयस्कर होते हैं, ऐसा विचार ही अनिश्चितता का कारण है।

३ एप्रिल '५४

●

A friend in journey is the shortest cut.

३० मई '५३

भाषण अथवा भाव व्यक्ति का चोला प्रधान नहीं, केवल भाव प्रधान हैं और वे सदैव सर्वविध समादरणीय हैं।

१ जनवरी '५८

अपनी भूल न खोज पाना भी तो एक भारी कमी है। आत्म संयम अतः एकाग्रता का अभाव ही इस से प्रकट होता है।

३ जनवरी '५८

When you donot succeed on one strategy take up another, but donot lose heart. Try again.

१० अक्तूबर '५८

इधर उधर की हलचल से अपने काम में, दिनचर्या में बाधा पड़ने का कोई कारण समझ में नहीं आता। इसे तो न पढ़ने का मात्र बहाना ही समझना चाहिए। ऐसा करने का परिणाम होता है खिन्नता और अन्ततोगत्वा असफलता।

१५ अक्तूबर '५८

Religion or ethical instructions are simply economy of mental wealth.

१६ अक्तूबर '५८

प्रभु कृपा का तात्पर्य है मन का वश में हो जाना। बिना ऐसा हुए कुछ नहीं।

२० अक्तूबर '५८

●

पैसे के हिसाब-किताब से छुट्टी पाने पर मस्तिष्क से एक भार सा उतर जाता है।

२७ अक्तूबर '५८

●

घटनाओं का अपना कोई रुचि-अरुचिकारक प्रभाव नहीं होता। यह मन की अपनी स्थिति है जो उन से कभी आनन्द कभी उद्वेग ग्रहण करता है।

२८ अक्तूबर '५८

उद्विग्नता कैसे दूर हो ? ज़रा सोचिये कि ब्रह्माण्ड कितना विशाल है और उस में जीवन कितना शुद्ध । सदा ही अपना वास्तविक रूप जानने का यत्न करें ।

२६ अक्तूबर '५८

●

समय काटने मात्र के लिए तर्क, ऐसे विषय पर जो जीवन से गहरा सम्बन्ध रखते हों, नहीं करना चाहिये । हंसी खेल ही ऐसे समय के लिए उपयुक्त है वर्ना शक्ति का अपव्यय करने वाली बात होगी ।

१ नवम्बर '५८

स्वयं के आदर्शव्यवहार से ही व्यवहार में सामंजस्य लाने का श्री गणेश किया जा सकता है। 'परोपदेशे पाण्डित्यं' के रास्ते पर चलने से तो प्रतिकूल व्यवहार की ही उन्नति होने की अधिक सम्भावना रहती है।

२ नवम्बर '५८

●

Dependence is not religion whatever else it may be. Try to get solution to all your problems from whithin yourself.

२८ नवम्बर '५८

ओं ! शान्तिमयी मां ! समय-असमय होने वाली वाञ्छित-अवाञ्छित घटनाओं से मन की शान्ति भंग न हो, ऐसा वर दो मां !

७ नवम्बर '५८

Seek not, touch not with your toes even anything that is uncanny.

११ नवम्बर '५८

Right things done at the right time in a right way are bound to bring right prospects for the right man.

१४ नवम्बर '५८

नाटकीय सिद्धि में रमा हुआ पुरुष वास्तविक सिद्धि के लिए प्रयत्नशील हो उठे तो आश्चर्य की कोई बात नहीं क्यों कि वह सिद्धी का फलास्वादन तो स्वप्न में भी कर लेता है और उस फल को पाने को व्यग्र हो पड़ता है।

६ नवम्बर '५८

मिथ्या भ्रमोऽस्ति क्षुब्धस्य हृदयस्योत्पत्तिः, अतः विवेक रक्षणार्थं शान्तं भावं प्राप्नुहि।

१८ नवम्बर '५८

जब तक किसी काम के लिए अपना मन आग्रह नहीं करता, दूसरों के लाख आग्रह भी मन को उस कार्य में प्रवृत्त नहीं कर पाते।

२० नवम्बर '५८

●

अपने पास कोई हथियार न रखना कितनी बड़ी भूल है।

२७ नवम्बर '५८

●

Every new born child brings the message that God has not yet lost his faith in man.

१५ दिसम्बर '५८

'हम क्या करें कि जिस से विजय प्राप्त हो'—चिन्तन करो तो केवल यही करो। यह मत सोचो कि 'न जाने क्या हो, कहीं यह न हो या वह न हो।'

१८ मार्च '५६

अपना दोष दूसरों के मत्थे मढ़ना बहुत बुरी बात है। अपनी कमी को पहचानना चाहिये और उसके लिए किसी और को दोषी नहीं ठहराना चाहिए।

२१ मार्च '५६

शकुन मात्र मना लेने से क्या हो सकता है ? व्यवहार में चतुराई होनी चाहिए और जिस उद्देश्य के लिए शकुन मनाते हैं, उसकी प्राप्ति के लिए और सावधान रहना चाहिए ।

—

'शकुन मना लिए, अब कुछ करने की आवश्यकता नहीं, उद्देश्य स्वयं प्राप्त हो जाएगा'—यह दिवास्वप्न मात्र है ।

२२ मार्च '५९

●

'मौके पर चूकना' यह आदत कब छूटेगी ?

२३ मार्च '५९

संशयात्मक वृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक है परन्तु यह दो हृदयों के बीच खाड़ी बनाने का कारण अवश्य है। इसकी उपेक्षा ही उपयुक्त है।

२२ एप्रिल '५६

●

जीवन से ऊब जाना कितना सरल है—कठिन तो सम्मानपूर्वक जीना ही है।

—

कुछ सुना कुछ सुनाया—ऐसे ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता मिला करती है।

२७ एप्रिल '५६

उद्दिष्ट के समीप पहुंच कर भारी से भारी अड़चन को लाँघने की उग्रता हो ही जाती है।

—

पाँव जल गया है, फिर भी चलेंगे ऐसा प्रत्यक्ष देखने को मिला।

२८ एप्रिल '५६

●

जो कर लिया जाए वह कहने की आवश्यकता नहीं रहती।

—

खुली हवा में अपनी ही मोहनी शक्ति होती है।

३० एप्रिल '५६

निर्विकार मन की ही प्रतिक्रिया ग्राह्य है।

३ मई '५९

●

जब सोचने को बहुत-कुछ होता है तो कुछ भी नहीं सोचा जाता।

७ मई '५९

●

निश्छल स्नेह की अभिव्यक्ति पाकर हृदय सहज ही पुलकायमान हो उठता है।

१३ मई '५९

कर्त्तव्यपरायणता और निराशीवृत्ति सुखदायक होते हैं।

१८ मई '५९

प्रभो ! जब मेरी बुद्धि काम नहीं करती तो तुम्हारी शरण ही एक आश्रय है।

२० मई '५९

जिस की आशा ही न रहे वह मिल जाए, टूटी आशा बंध जाए, तो प्रसनन्ता का पारावार नहीं।

१६ मई '५९

Be virtuous and you will be happy Be happy. and you will begin to be virtuous.

२१ मई '५६

पुराने साथियों से मिल कर अद्वितीय प्रसन्नता होती है। ऐसे अवसर पर अपनी ध्येय-कल्पना का विचार भी उत्तम संस्कारणीय होता है।

२४ मई '५६

कुछ काल के लिए स्थानान्तरण से भी मन का सन्तुलन ठीक हो सकता है।

३० मई '५६

इतिहास का अध्ययन आवश्यक है।

२७ मई '५६

किसी किसी का मौन कितना खलता है।

—

साथी चुनना कितना कठिन है। प्रायः ऐसे अवसर पर बुद्धि काम नहीं करती और ईश्वर के भरोसे ही आगे बढ़ना पड़ता है।

—

Let us perform our duties gracefully and happily. Why to worry about the result? Honest efforts are the sole necessity for a noble life.

२८ मई '५६

'दिन भर कुछ नहीं किया' ऐसा कहने का अवसर नहीं आना चाहिए। जीवन के क्षण महा-लक्ष्य की ओर पग पग बढ़ते रहने में ही लग सकें, ऐसा कहने का प्रयत्न करते रहें।

१ जून '५९

To every problem
There is a solution,
or there is none.
If there is one, try it
If there is none, don't mind it.

—

Repulsion towards an elderly person is undesirable yet inexplicable.

२ जून '५९

जितना हो सके उतना ही अच्छा है मौन रहना। परनिन्दा को सुनने से तुरन्त इनकार हो कर देना चाहिए।

४ जून '५९

कर्त्तव्य बुद्धि से ही किसी विषय पर विचार करने से जो हल निकले उसी को कार्यान्वित करने से मन को शान्ति मिलेगी।

५ जून '५९

जिस के पालन से उन्नति हो, जिसके पालन से अवनति न हो, जिस के पालन से वास्तविक रूप में स्थिरता रहे—परिवर्तन न हो, वह धर्म है।

जिस के पालन से अवनति हो, उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाए, वास्तविक रूप बदल जाए, उसे अधर्म कहते हैं, पातक कहते हैं।

७ जून '५६

●

"उस हाल में जीना लाज़म है,
जिस हाल में जीना मुश्किल हो।"

११ जून '५६

●

अपना दोष छिपाना और दूसरे के व्यवहार पर टीका टिप्पणी करना कोई श्रेयस्कर बात नहीं है।

२० जून '५६

धैर्यशील व्यक्ति को सभी पसंद करते हैं, आदर्श मानते हैं।

२१ जून '५६

●

जिसके सामने हृदय खोला जा सके, ऐसा हितैषी मित्र मिल जाए तो और क्या चाहिए।

२४ जून '५६

●

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध कितना निष्काम और ममतापूर्ण होता है।

२६ जून '५६

बीहड़ मार्ग में भी पगडंडी बनाने वाला धन्य है।

—

"कर्त्तव्य न बिसारिए, ईश संवारे काज"

४ जुलाई '५९

●

निष्काम भाव से कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ रह कर ही सुख-प्राप्ति हो सकती है।

१० जुलाई '५९

●

इच्छानुकूल भोजन मिलना अति आवश्यक है और सौभाग्य की बात है।

१६ जुलाई '५९

नाम-जप से भी आत्मसंयम और परिणामतः मानसिक बल लाभ होता है।

५ सितम्बर '५९

●

मार्ग दर्शन की अपेक्षा बढ़ जाती है जब दोराहे पर खड़े हों।

१९ सितम्बर '५९

●

बिना संत समागम ज्ञान प्राप्त नहीं होता, और बिना हरि कृपा संत दर्शन नहीं होता।

२० सितम्बर '५९

●

जहाँ तक हो सके किसी के विश्वास को स्थिर रखने में सहायता करनी चाहिए।

२ सितम्बर '५९

जीवन उपन्यास

९

"आयुष भर रंग उड़ा रहता
बस चढ़ते ढलते लाली है।"

६ मार्च '५९

●

अंगद रावण की सभा में उस समय गया जब राम लंका के तट पर पहुंच गए और सेना तैयार थी।

४ जून '५२

मन स्वप्न बनाता है या स्वप्न मन बनाता है?

● ५ जून '५२

प्रत्येक चलने फिरने वाले का जीवन एक उपन्यास होता है। न जाने कौनसी घटना कब घट जाए।

● २६ मई '५३

देवी देवता भौतिक कृपा ही करते हैं। दिव्य गुण तोभगवान् के सिवा कोई प्रदान नहीं करता।

१ जून '५३

Religion is the science of inner aspect. Life is continuous and uninterrupted flow of experiences.

—

Units of a life are experiences.

२० नवम्बर '५७

●

जीवन में प्रथम अनुभव कई बार होते हैं।

१ जनवरी '५८

It is essential for a driver that he keeps a vigilant eye upon the dash board. If he stops not the car before it is too late the car stops of its own accord and refuses to move any further. So if any of the 35 dials on the character board begins to show abnormalcy be sure that it is brought back to normalcy. This is the instruction of Hindu Dharma or Sanatana Dharma.

१४ नवम्बर '५८

विश्वास और सन्देह साथ २ चलते हैं, परन्तु ज्ञान रूपी तलवार से संशय काट फेंके जा सकते हैं।

१७ अक्तूबर '५८

●

Know partially to be the chief cause of all evil.

३ नवम्बर '५८

●

पतन और अनास्था परस्पर करण-कारण हैं। दोनों के परिणामतः खिन्नता होती है और क्षीणता बढ़ती है।

८ नवम्बर '५८

बातों का क्या है, चाहे जितनी कर लो !

९ नवम्बर '५८

●

पशु और मनुष्य दोनों में भूति होती है परन्तु मनुष्य को भूति के लिए विभूति, विभूति के लिए जीति, जीति के लिए नीति आवश्यक है। और यह चारों ओर वहाँ होती है जहां ब्राह्म तेज व क्षात्र तेज का समन्वय होता है।

१२ नवम्बर '५८

●

मनोरंजन करने में चुहिया भी कुछ कम नहीं हैं।

१६ दिसम्बर '५८

मृत्यु से व्यक्ति मरण को भी प्राप्त हो सकता और अमरता को भी।

३० जनवरी '५६

हारी बाजी जीतने पर एक अनुपम प्रसन्नता होती है।

३१ जनवरी '५६

आत्म प्रकाशन की इच्छा भी बहुत बलवती होती है।

कभी कभी हम दूसरों की इसलिए भर्त्सना करते हैं कि वे दूसरों की निंदा करते हैं।

१ फरवरी '५६

I shall continue to believe you, until you prove yourself to be unworthy of it.

४ फरवरी '५६

व्यक्ति जब यह विचार करता है कि मेरी दशा वर्तमान से भी अधिक दुःखप्रद हो सकती थी तो वह संतुष्ट रहना सीख सकता है।

—

वैसे, आज भारत में जिसे दो जून तवे की रोटी मिल जाती है वह कई देशवासिओं की अपेक्षा अमीर माना जा सकता है।

१३ फरवरी '५८

आत्महत्या, संघर्ष से बचने का सरल उपाय है। अकर्मण्य और तामसी व्यक्ति इस का बड़ी रुचि से चिंतन करता है। अथवा तामसी-वृत्ति आत्महत्या के विषय रुचि में उत्पन्न करती है।

● २ मार्च '५६

काम कर लेने के पश्चात् घबराहट कम हो ही जाती है।

● ११ मार्च '५९

परम्परा की रक्षा कितनी कठिन है.........
कितनी स्वाभाविक है।

४ एप्रिल '५९

स्वाध्याय मंडल की अपनी ही उपयोगिता है।

८ एप्रिल '५९

●

स्नेह की खान में सर्वत्र स्नेह ही तो मिलेगा, अतः वहां स्नेह की ही खोज होती है।

२६ एप्रिल '५९

●

पंजाबी स्वभावतः परिश्रमी वा साहसी होते हैं, अतः काम करने में लज्जा का अनुभव नहीं करते।

३० मई '५९

अवगुणों के कारण मुंह छिपाने का अवसर आता है।

—

बलिदान की कीमत वसूल नहीं की जाती।

५ जुलाई '५६

●

सुस्थिति प्रत्येक स्थिति में आवश्यक और अनिवार्य है। कम से कम नीरोगता तो रहनी चाहिए।

● १८ जुलाई '५६

प्रणय गीतों में भी एक रस होता है, मादकता होती है, जिसे चखने को मन चाहता है।

३० जुलाई '५६

अन्तर्मन की दुर्बलता के कारण अचेत होता है। इसे आत्मदुर्बलता भी कहते हैं। जब चिन्ताओं का घेरा ज़ोरदार पड़ता है तो अचेतन अवस्था आ जाती है और कुछ सूझता नहीं। परवशता भी इसी का लक्षण है। इसीलिए इन्द्रियाँ भी काम नहीं करतीं।

१३ अगस्त '५६

●

आकृति का भी अपना महत्त्व है, क्योंकि आकार से प्रकार भी जाना जाता है।

११ सितम्बर '५६

जब पांच भौतिक देह देवताओं को लौटाया जाता है तो धो कर लौटाया जाता है ।यह बात किसी भी धरोहर को लौटाते हुए ध्यान में रखनी चाहिए ।

३ मार्च '५६